'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'

श्रेय

भारतीय साहित्यकार संघ की मुख पत्रिका—

अंक ३-४ क्वार-पौष २०२८ विक्रमी

संपादक

डा॰ रामदत्त भारद्वाज—मोहनलाल श्रीवास्तव

सौन्दर्यं साहितीनां जगति भरतभूनिर्मितानां नितान्तं ।
भूयात् सञ्चारयन्ती प्रयतमतिरियं पत्रिका विश्ववन्द्या ।।
पन्थानं दर्शयन्ती स्वरसमधुरिमापूरितं श्रेयसः स्वं ।
श्रेयोनाम्ना प्रसिद्धा गमयतु सुयशःसाहितीकारसङ्घम् ।।

आचार्य अमृतवाग्भव

● ● ●

अंक ३-४ : क्वार-पौष २०२८ वि०— मूल्य १.५० प्रति–५.०० वार्षिक

कार्यालय—५१/१ न्यू मार्केट, करौलबाग-नई दिल्ली-५ ।
दूरभाष : ५६५७०७

सम्पादकीय

यतोधर्मस्ततो जय :

धर्मनिरपेक्षा का सिद्धान्त भारतीय राजनीति में अनिवार्यता की इस स्थिति पर पहुंच गया है कि इसका परित्याग सम्भव नहीं और राजनीति एवं समाज के क्षेत्र में सक्रिय व्यक्ति को इसका सम्बल अत्यन्त आवश्यक है। इसे वस्तुतः धर्मनिरपेक्षा का धर्म कहा जा सकता है क्योंकि धर्म अपने तात्विक एवं भावात्मक शक्ति से मनुष्य की अन्तर्बाह्य क्रियाशीलता को आबद्ध किये रहता है। तभी तो धर्म में धारण की शक्ति का उल्लेख है।* इस प्रकार यह स्वयं सिद्ध सिद्धान्त स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि मनुष्य अथवा इससे सम्बद्ध संसार में धर्म एक तथा मूल तत्त्व है।

यह एक विचारणीय विषय है कि धर्मनिरपेक्षा के सिद्धान्तवादियों की दृष्टि में धर्म का अर्थ मत और सम्प्रदाय है। परन्तु यह मननीय है कि उक्त सिद्धान्त की मूलभूमि मनुष्यता है। भारतवर्ष में अनादिकाल से जिस सत्य के प्रति हम सब समर्पित हैं वह है मनुष्यता। वर्तमान बंगला देश की मुक्ति में भारत ने जो दायित्व निर्वाह किया है उसका एक ही अर्थ है कि एशिया के प्राचीनतम संस्कृति वाले देश के निवासी अपनी परम्परा और धर्म भावना को सर्वोपरि महत्व देते हैं चाहे उन्हें घोर से घोर आपत्ति का सामना क्यों न करना पड़े। इसी विशुद्ध सात्त्विक धर्म भावनाके कारण भारत को विजयश्री मिली है जिसका श्रेय वर्तमान प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के कुशल नेतृत्त्व को देना सर्वथा उचित है। भारतीय साहित्यकार संघ के महामंत्री श्री क्षितीश वेदालंकार ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को भेजे गये बधाई-पत्र में इस तथ्य का उल्लेख किया है कि भारत का विभाजन अप्राकृतिक और अन्यायपूर्ण था। अतएव इस विभाजन से पीड़ित मनुष्यता की मुक्ति भारत का धर्म है जिसका उसने पालन किया है। जहाँ धर्म है वहाँ विजय है।

---

*धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।

भारत का इतिहास इसका साक्षी है कि भारतवासियों ने अधिकतर धर्म-रक्षा के लिये युद्ध किया है। राम-रावण संग्राम और महाभारत के युद्ध का आधार था धर्म की रक्षा। दोनों ही युद्धों में यद्यपि तात्कालिक सामाजिक स्थितियों के कारण कुछ ऐसे प्रसंग मिल सकते हैं जिनमें अधिकार और उपभोग की ओर झुकाव मिले परन्तु सम्पूर्ण युद्ध की मूल ध्वनि धर्म रक्षा है। राज्य विस्तार और यश प्राप्ति के लिये भारत ने कभी युद्ध नहीं किया। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बंगाल की युद्ध-भूमि है।

साधुवाद : आचार्य भुवनेश चतुर्वेदी ने अमेरिका तथा चीन की नीतियों पर गंभीर समीक्षा करते हुए आज के संदर्भ में उभरने वाली परिस्थितियों पर बहुत पहले ही संकेत कर दिया था। पुस्तक के अंतिम पृष्ठ में अमेरिकी जनरलों पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा है कि इन जनरलों की नीति "न तो हारना और न हारने देना है। जिससे विघटन और दारिद्र्य का साम्राज्य अमेरिका की सम्पन्नता बढ़ाते रहें। उन्होंने स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा के लिए भारतीय सेना की कूच आवश्यक बताई थी। उनकी पुस्तक से एक सुविचारित बुद्धि-मार्ग का ज्ञान होता है। इसके लिए हम उन्हें साधुवाद देते हैं। पुस्तक भारतीय साहित्यकार संघ से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को पहुँचा दी गई थी।

● ● ●

महामहिम उपराज्यपाल श्री आदित्य-नाथ झा के आकस्मिक देहावसान पर भारतीय साहित्यकार संघ उनके शोक-सन्तप्त परिवार के साथ हार्दिक संवेदना प्रकट करता है तथा दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता है।



शुभ सम्मति

हमारे जीवन-दर्शन में, जो जागतिक जीवन-विचार है, 'प्रेय' और 'श्रेय' इन दोनों को उचित स्थान दिया गया है, समन्वयात्मक दृष्टि से, धर्म की परिभाषा इसी सम्यग्-दृष्टि से की गई है। किन्तु संतुलन बिगड़ जाने पर यह परिभाषा अधूरी रह जाती है। परिणामतः हमारा जीवन प्रेय को पकड़ लेता है और उसी से चिपट जाता है, और श्रेय छूट जाता है। यही कारण है कि गीता ने धर्माविरुद्ध 'काम' को ही स्थान दिया है। श्रेय का हाथ छोड़कर प्रेय उन्मत्त या अनियंत्रित हो जाता है और विनाश का कारण बन जाता है। श्रेय का निस्संशय संकेत है मानव की ओर कि यदि श्रेय से विमुख हुआ तो सर्वनाश के गर्त में जा पड़ेगा।

कदाचित् इसी विचार को लेकर दिल्ली से 'श्रेय' नामक एक त्रैमासिक प्रकाशित हुआ है। उसका यह दूसरा वर्ष है। इसके सम्पादक हैं डॉ० रामदत्त भारद्वाज तथा श्री मोहनलाल श्रीवास्तव। श्रेय के मैंने जो चार पाँच अङ्क देखे उनसे मैं प्रभावित हुआ हूँ। श्री भारद्वाज के संस्कृत लेख भी इस त्रैमासिक में देखने में आये। आर्य-संस्कृति को आधार मान कर जीवन-दर्शन के अनेक पहलुओं पर इसमें गम्भीर विचार किया जाता है। साथ ही ऐहिक अभ्युदय पर भी समन्वयात्मक दृष्टि से ध्यान रखा जाता है। ऐसा सुन्दर विचारोत्तेजक त्रैमासिक अधिक से अधिक हाथों में जाए और उससे पर्याप्त लाभ उठाया जाये ऐसी मेरी अभिलाषा है, यह जानते हुए भी कि इस कोटि की पत्रिकाओं का प्रचार एवं प्रसार हिन्दी जगत् में यथेष्ट नहीं होता है, और यह चिंता का विषय है।

४-१-७२ वियोगी हरि

जीवन में पशुओं की भांति उसे यहां से वहां क्रय विक्रय के खेल में यहां से वहां उठा कर फैंक दिया गया। व्यक्ति-स्वतंत्रता और वाणी स्वातंत्र्य के साथ जिस देश ने धर्म निरपेक्षता को अपना नारा बनाया था उसने इन करोड़ों दासों को न वाणी की मुक्ति दी न उपासना की स्वतन्त्रता। व्यक्ति तो पशु बन कर ही रह गया। परिवार का विस्तार भी रह गया पशुवत् गर्भाधान जब कभी स्वामी को आवश्यकता हुई और दासों की या पैसे की। स्वामी की इच्छा पर परिवार बसते और उजड़ते और इस प्रकार अन्त में काले लोगों के नाम भी दिये गये तो उनके स्वामी के नाम पर। संस्कृति विनाश की ऐसी कल्पना विश्व के इतिहास में शायद ही और कहीं मिले।

दमन और विनाश की इस चरम सीमा में भी मानव की रचनात्मक तथा रक्षात्मक शक्ति अद्वितीय है। अमेरिकन नीग्रो जाति का लोक-काव्य प्रायः मानवीय अभिव्यक्ति बन कर ही हमारे सम्मुख आया है। सब क्षेत्रों से काट दिए जाने पर भी संगीत, लोक काव्य और क्रीड़ा जगत् में नीग्रो जाति की देन अद्वितीय है। ये राष्ट्र के भौतिक निर्माण में उसकी रक्त और मज्जा परवशता के कठोर वृत्त से घिर कर ही निरन्तर प्रयुक्त हुई है। यहां तक कि स्वतंत्रता के लिए हुए ब्रिटेन-अमेरिकन युद्ध में भी पहली आहुति एक दास नीग्रो की ही थी। भले ही उसे आज तक सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त न हुई हो।

इस अवर्णनीय अमानवीय स्थिति में रह कर नीग्रो जाति की आत्मा में दो प्रकार के भाव निरन्तर उठे। एक ओर नये मिले धर्म के अहिंसक यीशु में अमिट विश्वास के प्रतिफलस्वरूप यातनामय जीवन के प्रति भी एक विश्वास। इस प्रकार के अकृत्रिम गीतों का नाम दिया गया : स्प्रिच्युअल यानि आध्यात्मिक भक्ति गान। दूसरे प्रकार की भावना थी उस असहाय अवस्था में भी विद्रोह तथा प्रतिशोध का भाव, जिसने व्यावहारिक रूप में अनेक बार यदि स्वामी की जंज़ीरें तोड़ने का यत्न किया तो काव्यरूप में दिया आवेश और प्रतिरोध का स्वर। अधिकाँश रूप में यह लोक-काव्य अफ्रीकन धुनों में प्रणीत उन एकान्त के क्षणों के लिए था जबकि थकेमाँदे दास रात को अपने दड़बों में जाकर अपने साहस को अव्यक्त रखने के यत्न में गीतों और कथाओं द्वारा इस तथा उस लोक के प्रति

अपना विश्वास प्रकट करते और अपनी अगली संतति को तैयार करते, आगे आने वाले कठोरतम मानव संघर्ष के लिए। मौखिक रूप से और गोपनीय रूप से प्रसारित उनका सारा साहित्य कभी भी ऊंचे सुसंस्कृत मानव की निधि तो न बन सका पर जो कुछ भी कालान्तर में तथाकथित उदार अध्येताओं को मिल सका उसमें उनका इतिहास उनकी भावनाओं का कथानक ज्यों का त्यों उतरता है। नीग्रो जाति का यह लोक काव्य दास प्रथा के उन समर्थकों को करारा उत्तर है जो कहते हैं कि नीग्रो लोग केवल बालकों की भांति सरल, अज्ञानमय तथा असहाय हैं और वे स्वामी का वरद हस्त पाकर सुख का अनुभव करते हैं। स्वामियों ने यह तो अनुभव अवश्य किया था कि यदि वे खेतों में भी इन काले आदमियों को गाने दें तो उनकी क्रियाशक्ति अवश्य बढ़ जाती थी अतः अनेक जमींदार स्वामियों ने तो गायक नीग्रो युवतियों को भी खेतों में रख छोड़ा था। किन्तु रात के अंधेरे में उन स्त्रियों का शरीर भले ही स्वामियों का मन मोह ले उनके गीत कभी बहरे कानों तक न पहुंच सके। और जब दास प्रथा के अन्त होने के बाद बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में लोक साहित्य के अध्येताओं ने इन गीतों का विश्लेषण करना आरम्भ किया तो उन्हें लगा कि यदि नीग्रो संगीत अमेरिका के लोक गीतों में है तो अमेरिका का इतिहास है: दासों का इतिहास। दासों की दृष्टि से प्रभावित स्पष्ट और सरकारी कागजों की बनावट से परे सच्चा इतिहास। इस लेख में इन्हीं मानवों की आत्म कहानी जो गीतों के माध्यम से संघर्ष रत हैं, संक्षिप्त में दुहराने का यत्न किया जाएगा।

आध्यात्मिक भक्तिभाव के गीतों में भी अनेक विद्वानों के अनुसार प्रतीकात्मक भाषा में नीग्रो जाति की स्वतंत्र भावना न्याय के लिए कामना और गोपनीय दास संघर्ष की संकेतात्मक भाषा झलक की मिलती है। अनेक राज्यों ने स्पष्ट भाषा में किसी भी प्रकार के प्रचार प्रसार के विरूद्ध कानून बनाए थे। कहीं कहीं तो नीग्रो लोगों में किसी भी प्रकार का स्वतंत्र भाव भरने के लिए मौत की सजा हो सकती थी। यहां तक कि स्वतंत्र हुए नीग्रो वर्ग में भी जिनकी स्वतंत्रता किसी ने मूल्य देकर खरीद ली थी इस प्रकार की प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग अन्य राष्ट्रों की कविताओं में भी परिलक्षित है यथा आयरलैंड के प्रतिरोध गीतों में ब्रिटेन के प्रति पशुओं के प्रतीकों से अनेक भाव व्यक्त किये हैं जो केवल देश भक्तों को ज्ञात थे। यही नहीं जब श्वेत लोगों ने कई स्वतंत्र नीग्रो लोगों 'को' हम होंगे

स्वाधीन" गाने पर जेल भेजा गया था तो "स्वामी हमें बुलाएंगे पर" जैसे प्रतीकात्मक शब्दों में अपनी वही टेर लगानी प्रारम्भ की। इसी प्रकार बाइबिल पात्रों के माध्यम से "प्रभु ने मुक्ति दी डेनियल को" तथा मौसिस जाओ जाओ नीचे" आदि से अपनी कामना व्यक्त की। शैतान आदि शब्दों का प्रयोग धार्मिक अर्थ के साथ ही साथ शायद श्वेत जाति के लिए भी किया गया। इसी प्रकार का एक धार्मिक भक्ति गीत है :

शुभ समाचार, हे भद्र, शुभ समाचार
कहने का
शैतान का न कर विचार
शुभ समाचार, हे बन्धु, शुभ समाचार
मैंने सुना स्वर्ग से आज शुभ समाचार
मेरे भाई को मिल गया स्थान
मुझे है हर्ष
मेरे भाई को मिल गया है स्थान
मुझे है हर्ष
शुभ समाचार।
मेरे प्रिय को मिला स्वर्ग में धाम
मेरे प्रिय को मिला स्वर्ग में धाम
शुभ समाचार। बन्धु, शुभ समाचार।

उक्त गीत में उन स्वतंत्र हुए नीग्रो दासों के प्रति हर्ष व्यक्त किया गया है जो रेल के गुप्त मार्ग से उन दिनों एक नियोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत भाग जाते थे। स्वर्ग दक्षिण राज्यों से बाहर उन राज्यों में निवास था जहां उत्तर में दास प्रथा बन्द कर दी गई थी। इसी प्रकार निम्न गीत में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए गए हैं :

क्या है वहां मेरी आंखों के नीचे
दो देवदूत आ रहे हैं मेरी ओर
मैं चाहता हूं साथ होना कारवां के।
कारवां के साथ होना चाहता हूं
हां चाहता हूं साथ होना कारवां के

हे भाई
हार मत तू मान
मान मत तू हार भाई
हार मत तू मान
जोहते हैं हम प्रभु की बाट
हम पहुंचेंगे कैनान के किनारे
कैनान के किनारे पहुंचेंगे हम
ग्रौर सदा को दूर होंगे गम,

यहां बाइबिल का स्थान कैनान सुख के धामके रूप में जहां स्वतंत्रता पूर्वक शेष जीवन बीतेगा, प्रस्तुत हुग्रा है।

किन्तु कभी कभी साहस को छोड़कर वह प्रभु के सामने सहजभाव से ग्रपनी वेदना रख देते हैं :

हूँ मुसीबत में प्रभु
मैं हूँ मुसीबत में
समाधि मेरी बन गई है वेदना मेरी
कभी मैं रो दिया तो कराहा कभी भी
कभी कुछ भी न कर सकना यही बस शक्ति में गम
समाधि के लिए भी मुसीबत है मुसीबत है।

यहां न केवल जीवन बल्कि मरने के बाद भी ठीक प्रकार की ग्रन्त्येष्टि प्रक्रिया न होने से ग्रन्तर की वेदना उमड़ पड़ी है। स्वामी का धर्म तो उन्हें मिला पर मरने पर भी धार्मिक संस्कार नहीं किया जा सका यदि वह दासावस्था में ही पंचतत्व को प्राप्त हो गए तो।

किसी को है पता क्या ?
मुसीबत का मेरी
यीशु को छोड़कर
किसी को क्या पता है ?
शैतान को मुझसे घृणा है इस कदर क्यों ?

एक बार आने पर पकड़ में
छोड़ता वह क्यों नहीं है ?
जाने दे मुझे शैतान जाने दे मुझे ।

इतना विश्वास होते हुए भी यीशु पर कि वह उसे कभी उस स्वर्गीय पुण्य-भूमि की ओर ले जाएंगे, जिसका उसे आश्वासन दिलाया गया है बार बार, उसके नवप्राप्त धर्म द्वारा, कभी कभी उसकी दासता और तज्जन्य यातना उसे निराश कर देती है, असहाय बच्चे की भांति । वह कराह उठता है :

कभी कभी मुझे अनुभूति होती है —
बिना मां के बच्चे सी ।
जो दूर है बहुत दूर ।
अपने घर से ।
जो भगवान्, बहुत दूर ।
कभी मुझे लगता है ।
कि मेरा कोई मित्र नहीं, अपना नहीं,
और मैं हूं घर से दूर,
ओ राम, बहुत दूर ।
और कभी लगता है,
मैं पैदा ही हुआ नहीं,
और मेरा दिन जाने का दूर नहीं,
भगवान्-मैं बहुत देर यहां नहीं रहूंगा ।
हवा में बहते पंख की तरह,
लगता है, मैं सदा के लिए चला गया,
घर से दूर,
हे राम-बहुत दूर ।

नीग्रो बच्चे का केवल मां से ही विशेष सम्बन्ध था । गाय के बछड़े की भांति जिसे पिता का प्रायः पता भी नहीं रहता । इसीलिए मां का ही उल्लेख विशेष रूप से इन गीतों में हुआ है । भावनात्मक रूप में ही नहीं वास्तविक रूप में भी :
एक दिन सवेरे ही प्रातः

मृत्यु मेरे कमरे में सरक कर आ गई,
प्रभु मैं क्या करूं ?
मुझे मुक्ति मिल सके जिससे।
मौत आई, और ले गई मेरी मां को,
प्रभु बताओ मैं क्या करूं ?
जिससे मुझे मिल सके मुक्ति।"

और दूसरे गीत में वह अपनी भावना व्यक्त करता है मां के बाद–

"मां चली गई-मेरी मां चली गई,
मैं भी ओ प्रभु, पीछे रह नहीं सकता-
जब मां मेरी चली गई स्वर्ग को।
वहां बहुत जगह है,
स्वर्ग में बहुत जगह है,
मैं भी पीछे रहूंगा नहीं
मैंने भी नापा है वह रास्ता,
रास्ता स्वर्ग का नाप लिया है, मेरे स्वामी, मैंने भी,
अब पीछे कैसे रहूंगा मैं !"

इसी प्रकार के एक अन्य अपूर्ण भावनामय गीत में वह अपने धरती पर रह जाने के लिए कराहता है :—

"कितनी देर और मां कितनी देर
असहाय पापी को सहना पड़ेगा यहां।"

पर उसका विश्वास भक्तिकाल के अद्वितीय कवि सूरदास की भांति यीशु में पुनः लौट आता है, और उसे लगता है, वह सब कुछ कर सकते हैं। उनकी महिमा अवर्णनीय है :—

"कैसी महिमा दिखाई यीशु ने
अब मुझे कोई कैसे रोकेगा ?
यीशु को, भावभीने यीशु को, कर दिया मैंने समर्पण,
उसी की शरण हूं मैं,
मूक को वाणी देता है यीशु,
पंगु को चलने की शक्ति,

अंधे को दृष्टि दी है यीशु ने,
यीशु में सामर्थ्य है सब कुछ करने की।"

किन्तु एक बात निश्चित है। मुक्ति का वह मार्ग एकाकी है। वहां सबको अकेले ही जाना है।

"उस निर्जन घाटी में चलना है तुम्हें—
एकाकी ही
कोई भी न जाएगा तुम्हारे लिए बस—
जाना होगा तुम्हें ही अकेले।
तुम्हारी मां गई थी अकेली,
उस निर्जन घाटी में
और कोई नहीं गया था वहां,
उसके बदले,
वह ही गई थी अकेली।

इस प्रकार चाहे वह मुक्ति स्वर्ग की हो, चाहे दक्षिण राज्यों से भागकर उत्तरी राज्यों में जाने की, पशु से भी गिरे जीवन को बिताने वाला बन्दी नीग्रो जिसकी एक पीढी ही नहीं कई पीढियाँ स्थायी दासता के लिए नरक को भेजी गई थी, आशा और विश्वास के माध्यम से जीते रहे। दूसरों को जीने की प्रेरणा देता रहा। भवसागर से पार उतरने की कल्पना में रत रहा और दूसरों को प्रकाशस्तम्भ बनकर मार्ग दिखाता रहा :

"हे पथिक,
हिम्मत न हारो,
आओ यीशु के साथ हम चलें,
अपने घर।
मेरा सिर आधी रात की ओस से तर है,
फरिश्ते मेरे गवाह हैं,
पथिक, हिम्मत करो,
यीशु के साथ आओ, हम घर चलें।।।।

नीग्रो जाति का दूसरा गीत था उसके ब्ल्यूज़, नीला गीत। अंग्रेजी का मुहावरा है, 'नीला अनुभव करना, जिसका अर्थ है 'व्यथा की अनुभूति। ब्ल्यूज़ की अनेक परिभाषाएं विद्वानों ने दी हैं। पर सबसे अच्छी और सरल भाषा में दी गई परिभाषा आज भी मुझे लगती है, एक परम्परागत बेपढ़े नीग्रो वृद्ध द्वारा दी गई व्याख्या : नीला गान है वह गीत, जब किसी भले आदमी को हो रहा हो बुरा महसूस।

इस प्रकार ब्ल्यूज़ हैं, समष्टि की अनुभूति से पगे व्यक्ति की क्षण विशेष की व्यथा की अनुभूति। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जिस गीत का आविर्भाव हुआ, वह ब्ल्यूज बन गये व्यक्तिगत मानसिक अवस्था की क्षणविशेष की अभिव्यक्ति का माध्यम। यद्यपि उनका जन्म स्प्रिच्युअल गीतों से ही हुआ था, तथापि भावों की दृष्टि से वे धर्म निरपेक्ष समस्याओं की अभिव्यक्ति बन गये थे। कालान्तर में इन्हीं गीतों ने आज संगीत के साथ मिलकर उस संगीत को जन्म दिया जिसे आज रॉक संगीत कहते हैं और बीटल जिसके विशेष गायक हैं। ये गीत श्रमगीत थे, स्नेहगीत थे, प्रणयगीत थे और अन्त में ये अन्याय के विरोध में आवाज उठाने वाले प्रतिशोध के गीत। मृत्यु के, श्वेत वर्ग द्वारा की गई हत्याओं के और अन्य कष्टों के गीत थे ये। एक शब्द में ये थे पारलौकिक जीवन से परे इसी जीवन के यथार्थ धरातल के गीत। यद्यपि दासता से मुक्त होने के बाद ये गीत भी पहले नीग्रो लोगों के गिरजाघरों में ही गाये गये—स्प्रिच्युअल की भांति—तथापि थे ये हृदय के आघातों के गीत। ब्ल्यूज गाते नहीं जिए जाते हैं—एक गायक ने कहा था। धर्मनिरपेक्ष होने के कारण ही ब्ल्यूज को 'डेविल सांग' भी कहा है—शैतान के गीत। शैतान के बारे में या शैतान के—दोनों ही भाव उनमें विद्यमान हैं।

ब्ल्यूज के प्रकार

ब्ल्यूज तीन प्रकार के माने गये हैं : **क्लासिक, ग्रामीण और नागरिक**। यूं गायन प्रणाली के अनुसार उनका वर्गीकरण शोक, रुदन, पुकार रोष के ब्ल्यूज़ में भी किया गया है। ब्ल्यूज स्वान्तः सुखाय परिवार, मित्र अथवा जेलयात्रियों के बीच भी गाये जाते थे और स्थानीय मदिरालय में ग्राहकों के लिये भी। साथ ही प्रज्ञाचक्षु नीग्रो किसी सड़क के किनारे या किसी उद्यान भोज के अवसर पर या पिकनिक आदि कुछ पैसा कमाने के लिये जोगियों की भांति भी गाते थे। प्रायः ब्ल्यूज गितार या

जाज़ संगीत वाले वाद्यों के साथ गाये जाते थे। ब्ल्यूज़ गायकों की नीग्रो समाज में भारी प्रतिष्ठा थी। न केवल गायक के रूप में वे उनके नायक थे, बल्कि कथानक के रूप में भी वह स्वयं के विषय में समष्टि का भाग बनकर गाते। अन्य नायकों के साथ अपने को मिलाकर ये गायक ब्ल्यूज़ के माध्यम से मानसिक अवस्था को गाते थे। मनः स्थिति ही ब्ल्यूज़ है। क्लासिक ब्ल्यूज़ वस्तुतः विषय के आधार पर नहीं वरन् समय के आधार पर किये गये वर्गीकरण में आते हैं। अधिकांश रूप से अमेरिका के श्वेत समाज में इनका प्रवेश बीसवीं शताब्दी के तीसरे शताब्द में हुआ। क्लासिक ब्ल्यूज़ मजे हुए कलाकारों द्वारा रिकार्ड किये उस समय के गीतों का नाम है। गीत तो पुराने थे, पर रिकार्ड १९२० के बाद हुए। अधिकांश कलाकार स्त्री वर्ग में हैं। पर उनके गीतों का विषय काफी अंशों तक शृंगारिक है। शक्तिमय, ताजगीपूर्ण और कुछ अंशों में आनन्दपूर्ण। कुंठाविहीन यौन के मधुर स्वर, जो प्रायः जाज़ संगीतकारों के साथ गुंजित होते एक प्रकार के क्लासिक ब्ल्यूज़ अमेरिका के मध्यवर्ग द्वारा स्वीकृत गीत माने जा सकते हैं। पर मूलतः ग्रामीण तथा नागर ब्ल्यूज ही इन गीतों का सही वर्गीकरण है।

मिसीसिपी नदी का डेल्टा ग्रामीण ब्ल्यूज़ की भूमि है। यहां जहां एक ओर नीग्रो कपास के खेतों में दासता बन्धन बंधे दिन रात काम करते वहीं दूसरी ओर कालान्तर में श्वेत गुंडागर्दी के शिकार नीग्रो लोगों के मरे शरीर भी इसी नदी को अर्पित किये जाते थे। अतः ग्रामीण ब्ल्यूज़ वही हैं जिनका जन्म दक्षिणी राज्यों के खेतों में हुआ है। नागर ब्ल्यूज़ वे हैं जो दक्षिण को सदा के लिए छोड़कर आए उत्तर के राज्यों के नगर में बसे मजदूर नीग्रो द्वारा बनाए गए गीत हैं। दोनों ही प्रकार के गीत नीग्रो के अनिश्चित जीवन के चित्रण हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

दासता में पिसे खेतों में काम करते हुए नीग्रो आशा करते हैं कि वे किसी दिन श्वेत लोगों को कमाकर यथेष्ठ धन देकर मुक्त हो जाएंगे। अतः निम्न गीत में समझौते की बातें हैं—अपनी और श्वेत मालिक की तुलना करते हुए भी—

टाम भले हैं,
कोई कहते हैं बहुत बुरे हैं।
बुरे हैं ?
फिर कैसे वे मेरे लिये ठीक हैं बताओ तो।

टाम खेतों की कतार में कहां है औरों से बड़ा
पर हर कोई कहता है कि उसे दिया है पैसा बहुत
और तुम हो खेतों में—कुछ मिलता मिलाता है नहीं
टाम से कहते हैं कुछ दे दो, कहता है खच्चरों के हिस्से में से लेलो कुछ।
टाम रहता है गांव में, मिस्टर राबर्ट है शहर में
सुबह होते ही मिस्टर राबर्ट उधेड़ देगा उस काले आदमी की चमड़ी
धरती में लौटेगा वह।
पर बताओ तो कैसे ? टाम है भद्दा मेरे लिए।

और दूसरी ओर स्थिति है 'एक आदमी की जो चालीस वर्ष तक हरवाहा रहा। आजाद हुआ। पर जिसे विवाह के बन्धन ने पुनः हरवाहे के रूप में दास बनने को विवश किया—

चालीस साल बाद मैंने
शपथ ली अब कभी और नहीं बाहूँगा।
अब हूँ मैं विवाहित पुरुष
और पुनः हल का मुंह देखना होगा
अब एक नारी है इसका कारण।
वह कहती है, "विल, यदि तुमने कपास नहीं उगाई
तो शरद् में पैसा न होगा एक, हे राम।"
"खेती होगी ठीक, हे शुभे,
यदि तुम्हें पता हो कि करना है क्या ?
इसी ने मार डाला था मेरे बाबा को
और यही बनेगी मेरी मौत भी।"

समाज की व्यवस्था कुछ ऐसी है कि चाहे वह जितना भी श्रम करे, रहेगा वह नीचा ही। इसलिए वह उदासीन हो जाता है श्रम के प्रति।

यहाँ नीचे गड्ढे में आरम्भ हुआ मेरा जीवन
यहीं होगा समाप्त भी।
नहीं लगता कि मैं कहीं पहुँचूंगा
इसलिए मैं अब आराम से करूँगा काम, प्रिये, बस आराम से।
पहाड़ सा भारी भी करो तुम काम

पर एक शब्द कहीं कह दिया तो वे दिखा देते हैं हरी झंडी।
और तुम्हारे मालिक क्या करते हैं?
कौन जाने :
वे कोशिश में हैं बस तुम्हें रास्ता दिखाने की।

साझे पर किसी जमींदार के खेत में काम करते यदि कुछ कमा भी लिया तो उसे खच्चर पर लाद कर खुले भाव बाजार में बेचना होगा। अनेक अफसर बीच में मिलेंगे जो बस बहाना ढूंढते हैं सताने का। एक गीत में यह दयनीय स्थिति हास्यास्पद हो उठी है—

मैं गरीब किसान—क्या करूं?
जब कुछ अन्न मिला तो अपने खच्चर पर लाद चला
खच्चर मेरा जिम नाम का—पूंछ हिलाने में भी पड़े जोर
पुलिस कहती है—खच्चर को मारा फिर तो जेल जाना होगा बस।
खच्चर ने सुना सिपाही ने जो कहा, और गया बैठ
देखा मेरी ओर हंसा, सिर किया नीचा और पैर पसार गया।

नैराश्य, बेकारी, असफल प्रेम सभी कुछ शराबी बना देते हैं। इसका दुःख भी है और अप्रत्यक्ष सुख भी :

हां, मैं पीता हूं, जिससे चिन्ता न हो,
मुस्कराता हूँ, जिससे रो न पड़ूं।
अपने चेहरे लिये रहता हूँ हँसी,
लोग समझें नहीं दिमाग में क्या है?
कुछ लोग सोचते हैं कितना सुखी हूं मैं,
जानते जो नहीं वह मेरे मन में है क्या?
मेरे चेहरे को हँसी बस दिखती है उन्हें,
खून से लथपथ मेरा दिल दूर है कितना उनसे।
और गरीबी की अवस्था में मित्र भी कौन है—
सुबह उठा हँसता मैं—रात रोते रोते सो गया था
धन मेरा खो गया था।
सब साफ, धेला भी नहीं।

पैसा था जब पास—मीलों चारों ओर
मित्रों से घिरा था।
पैसा जब रहा नहीं,
मित्र मानो मुझे जानते नहीं पहचानते नहीं।

नीग्रो जाति की दुरावस्था में न्याय हमेशा पक्षपातपूर्ण रहा है। दक्षिणी राज्यों में जहां काले आदमी को कत्ल करके भी श्वेत व्यक्ति कुछ डालर जुर्माना देकर छूट जाता, वहां नीग्रो लोग छोटे अपराधों के लिये भी लम्बी-लम्बी सजाएं पाते रहे हैं। अभी हाल ही में कैलिफोर्निया की जेलों में मृत्यु से खेलकर भी जिन नीग्रो नेताओं ने विद्रोह किया, वह इसी कारण कि उन्हें सत्तर डालर चुराने पर भी बारह साल की जेल यात्रा करनी पड़ी। अतः ब्लयूज़ का एक बड़ा भाग जेल की यातना से भरा पड़ा है।

ताक झांक का आरोप था मुझ पर,
एक भी चीज़ मैं देख तो सकता नहीं।
दुर्भाग्य मेरा मुझे मार रहा है।
और मैं कब तक सहूँगा यह।
पैसा न था पास मेरे एक।
पर लगा आरोप कर न चुकाने का।
आरोप था मुझ पर हत्या का,
आज तक किसी को सताया नहीं मैंने,
जाली लिखने का था मेरा अपराध,
नाम भी अपना नहीं मैं लिख सकता।

(२)

तीस दिन काम करके—
और लम्बे छः महीने जेल में हो गये,
बुरी है हालत मेरी,
जमानत भी तो कोई न कर पाया।
अरे जेलर महोदय, श्रीमन्, कृपा करो,
खोल दो यह द्वार मेरे लिए।
जेल तो भरी है ब्लयूज़ गीतों से,

पता है मुझे मुझी पर वे सब पड़ेंगे आकर।
मेहनती हूँ मैं बन्दी,
बिना मुकदमा चलाए ठूंसा है मुझे,
मेरा दिल है बस चकनाचूर,
आखिरी है राह का पत्थर मुझे।

ऐसे ही कैदियों को जेल से बाहर बेड़ियों और हथकड़ियों में ले जाकर उनसे रेल बनाने का काम लिया गया। जमीन साफ करते, दलदल का पानी निकालते, पत्थर तोड़ते। आदमी और स्त्रियों में बिना भेदभाव किये एक साथ बांधकर—१२ वर्ष के बच्चों को बेसहारा बूढ़ों के साथ जकड़कर, इन बन्दियों के कामों से करोड़ों रुपए का काम लिया गया बेगार में। वे बीमार होते—टैक्सास की लू में मरते, कोड़ों से पिटकर मरते, चेचक की बीमारी से मरते, पर कोई सुनवाई नहीं होती थी। श्वेत मानव की सभ्यता का निर्माण हो रहा था, जेल में झूठी सजा पाए काले लोगों की सुखाई चमड़ी से। १६३० तक भी अमेरिका में यही हालत रही।

जज ने कहा—"दोषी"—क्लर्क ने लिख दिया,
जज ने कहा—"पहना दो इनके जत्थे को बेड़ी—जंजीरें।"
मैंने कहा—"मैंने नहीं मारा कोई।' पर हत्या मेरा अपराध था।
और अब मैं जंजीरों से बँध गिरोह में काटता हूँ सजा।
शरीर के चारों ओर जंजीरें हैं
पैरों में बेड़ियां हैं
यही है भगवान् कारण, सुन मेरे गाए
मेरे जंजीर से जकड़े ब्ल्यूज।

नीग्रो के लिये सड़क पर होना ही या रेल की यात्रा में ताश खेलना ही या शराब पीना ही इतना बड़ा अपराध था कि उसे पकड़कर इस प्रकार के गिरोह में भेज दिया जाता, जहां वे छाती तक के दलदल भरे गड्ढों में तपती धूप में अठारह-अठारह घंटे काम करते। सोते समय वे कठोर धरती पर लिटा दिये जाते और उनके घुटनों में लम्बी लौह शृंखलाएं बाँध दी जातीं, जिससे वे रात भर एक दूसरे से बँधकर सोएं। पुरुष स्त्रियां और बूढ़े बच्चे सब एक साथ। हाथों में ताले, पैरों में बेड़ी। कभी-कभी अपनी प्रिय नारी का दुःख देखकर पुरुष का मन रो उठता—

आज मैं जज से कहूंगा खुद,
"भेज दी तुमने मेरी प्रेयसी सड़क कूटने को,

मुझे एकाकी बनाकर ।"
मुझे इतना दुःख कभी हुआ न था जब तक कि—
जेलर मेरी गली में नहीं आया था और मेरी प्रेयसी का नाम—
पुकारा न था ।
फिर जेलर ने कहा—सब कैदी बनालें एक कतार,
वह जंजीरों से जकड़ी नारी भी ।
"ब्ल्यूज़ हैं मेरे इतने दर्दभरे कि चैन है नहीं,
कहूंगा जज से मैं—"क्या मैं काट सकता हूं सजा,
प्रेयसी के बदले ।"

इस प्रकार के अमानवीय व्यवहार से नीग्रो जाति को कभी भी साधारण परिवार का सुख श्वेत समाज ने दिया नहीं । घर उजड़ते, बनते, बच्चे पैदा होते तो यही कहानी सुनकर, वह ये ही अपराधी—काले जो थे ।

जेल में गई पुकार करते—'हे जेलर महोदय
श्रीमन्—मुझे अपने उन्हें देखने तो दो' ।
कोठरी काल की खुली—देखा पिता के मुरझाए चेहरे को ।
आह प्यारे पिता—काश में तुम्हारी जगह चली जाती ।
जेलर को तरस आया मानो, मुस्कराया और बोला—
खेद है, सुन्दरी तुम्हारे मर्द ने करदी है पितृ हत्या ।
महिलाओ, तुम खरीद लो ताले और चाबियां,
यही है तरीका बस अपने मर्द को मुझसे दूर रखने का ।
अगर ब्ल्यूज़ व्हिस्की होते तो मैं पीती रहती रात दिन,
मुझे जाना होगा यहाँ से—हाँ ! पिता को छोड़कर पीछे यूं ।

और इस प्रकार प्यार भी अधूरा है, जीवन भी अधूरा है, बस गाने के लिए । आजनगर में बसे नीग्रो अब भी दुःखी हैं, तब भी दुःखी थे । आज भी उनके लिये डूबता सूरज प्रतीक है डूबती आशाओं का । आज भी वे दक्षिण के राज्यों को त्याग की भांति छोड़ना चाहते हैं कई बार । पर जाएं कहां ? एक नागर ब्ल्यूज़ है—

सांध्य सूर्य को देख डूबता मन जाता है टूट,
क्यों ? मेरी नगरी मेरे प्रीतम से जाती है छूट,
कल की भी अनुभूति वही होगी जो पीड़ा आज,

मैं भी बिस्तर बाँध बोरिया बस जाऊंगा भाग।

और प्रेम की अस्थिरता पर व्यंग्य है—

प्यार है—टोंटी सा
चाहा बन्द किया, चाहा खोल दिया।
किन्तु जब कभी सोचा कि पा लिया
टोंटी बन्द हो गई——प्यार विदा हो गया।

जिस श्वेत समाज ने सारा श्रम लेकर भी जिसे भरपेट खाना न दिया, खच्चरों का भोजन दिया, उसे फिर भी जब कभी सेना में आवश्यकता हुई, वे भरती हुए ही। अमीरों की तरह उनकी मुक्ति अनिवार्य सैनिक सेवा से खरीदी तो जा नहीं सकती। उसे तो जाना ही होगा।

(चचा सेम=संयुक्त राज्य)

जब चचा सेम को जरूरत हो तुम्हारे मर्द की।
रोओ मत, मत चीखो, क्योंकि मना तो कर सकना——
उसके वश में नहीं।
उसका मन हल्का न करो रोककर,
ना, उसे रोको नहीं पीछे, बस जाने दो।

वस्तुतः विश्व के इतिहास में शायद ही किसी ने इतना सहा हो, जितना नीग्रो जाति ने बलिदान दिया है। इसीलिए तो आज जब मानव चाँद पर जाता है, वह आज भी पूछता है, उसके संवैधानिक अधिकार न सही, खाने को भर पेट भोजन तो दे, वह राष्ट्र, जिसके निर्माण में उसका रक्त सबसे अधिक बहा है। लोगों की चिन्ता उसे आज भी श्वेत वर्ग से ज्यादा है। फिर भी जब वे कहते हैं कि शान्त रहो। कभी सब कुछ मिलेगा अभी हमें ही पूरा करने दो अभी हमारी पूर्ति नहीं हुई तो आज भी शिकायत भरे युवकों और बड़ों के नाम उनका संदेश है :

लोग करते हैं शिकायत दुर्दिनों की,
बता दो हमें भी तो माजरा क्या है ?
दुर्दिनों की फिक्र है हमको नहीं,
झोलियाँ तब भी थीं खाली-अब भरा क्या है ?

जीवन-निष्ठा के नए मूल्य

भवानीप्रसाद मिश्र

● हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि, गांधी-चिन्तन के मर्मज्ञ और सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय के हिन्दी-प्रकाशन अधिकारी

————

'सन् १६०० से आज तक संसार तथाकथित प्रगति की दिशा में जिस तेजी से बढ़ रहा है, अगर वह उसी दिशा में कम ज्यादा उसी गति से बढ़ता चला गया तो एक या आधी शताब्दी में आज तक जो बातें गुण मानी जाती हैं, वे अवगुण मानी जाने लगेंगी। धार्मिक, सामाजिक नैतिक मूल्य जीवन के नियामक तत्व नहीं बच रहेंगे। शस्त्र-बल सर्वोपरि स्थान ले लेगा, नीति की जगह डंडे की प्रतिष्ठा हो जायेगी। बम आदि विस्फोटक शस्त्रास्त्र जागतिक हिंसा में समर्थ बनाये जा चुकेंगे और जोड़-तोड़, मेल-मिलाप और विचार सामंजस्य की जगह राज-सत्ताएँ तोड़-फोड़, विग्रह तथा पारस्परिक भय की भावना को रूढ़ बनाकर निष्कंटक बनने के प्रयत्न में जुटी रहेंगी।

ये शब्द १६०५ में हेनरी एडम ने एक मित्र को पत्र लिखते हुए कलम-बन्द किये थे। इस कथन का अधिकांश तो एटम बम के आविष्कार के होते ही सही सिद्ध हो गया था, रहा-सहा अंक अर्थात् नीति-नियमों का विलोम हुआ। उसके थोड़े ही दिनों बाद उस समय जब हिरोशिमा में उसका उपयोग भी कर डाला गया।

जागतिक परिस्थिति को पलक मारते ही सर्वांगीण रूप से बदल देने वाले इस आविष्कार और फिर उसके विनियोग की एक ही घटना ने हमें इसके फलितार्थों को सोचने पर विवश कर दिया है। मानव जाति के सामने आज तक जितने संकट

उपस्थित हुए हैं, विज्ञान द्वारा इस भयानक सम्भावना की अवतारणा उन सबसे बड़ा संकट है। इस संकट का सामना करने योग्य उपायों की योजना आज का यक्ष प्रश्न है। हमें प्राणपण से सोचना है कि वे कौन से राजनैतिक और नैतिक अवलम्बन हो सकते हैं जिनका सहारा लेकर हम आज तक की अपनी वास्तविक प्रगति और उसे अर्थ देने वाली सामाजिक व्यवस्था आदि को समूल नष्ट होने से बचा सकते हैं। आज से पहले की किसी भी समस्या से इस परिस्थिति की कोई तुलना नहीं है, इसलिए अगर हम इसकी सार्वभौम विराटता के अनुपात में प्रबल और कारगर नैतिक तथा राजनैतिक अंकुशों का निर्माण करके उन्हें गतिशील न बना सकें तो इस परिस्थिति से उत्पन्न भय और अनिश्चय ही इतने उत्कट हो उठेंगे कि विभिन्न देशों और जातियों के लोग एक-दूसरे को नष्ट करने के उपक्रम में सब कुछ समाप्त करके भूमंडल को जीवन-विहीन बना डालेंगे।

यदि हम संयम और समझदारी के अंकुशों को मानकर चलने की कला सीखकर विज्ञान के आत्महंता उपयोग को रोकने में समर्थ हो जायें तो हम अणुयुग और उसकी विवेकहीन शक्ति की अबाध्य धारा को काटकर इस अभूतपूर्व आपत्ति का सहज ही उल्लंघन कर जायेंगे। अर्थात् हमें इसमें तैरना तक नहीं पड़ेगा। यदि बुद्धि जीवन और ज्ञान में ऐक्य साधन की दिशा में दौड़ने लगे तो आज की अन्धी प्रवृत्ति जो जीवन के उद्देश्यों की ओर से नितान्त विमुख ,शक्ति के पीछे दौड़ती चली जा रही है—अनायास सन्देह में पड़ जायेगी और विवेक के सुप्त निर्झर स्रोत कलकल छल-छल बहने लगेंगे। अन्धा इस दौड़ से विरत होने के प्रयत्न-मात्र से मनुष्य को उन विकृत अभीप्साओं पर हावी होने के आनन्द का अनुभव हो जायेगा जिनके चंगुल में पड़कर वह जीवन की बूंद-बूंद समुद्र जैसी व्यक्ति-व्यक्ति सार्वभौम स्वतन्त्रता को भूलकर अपने आपको मरण-द्वार पर बंधक बनाये बैठा है। संयम, स्नेह और समझदारी को सफल करने का संकल्प मनुष्य को अणुयुग की भयावहता से बचा लेगा। यन्त्र और यन्त्रवत् तन्त्रों का राज्य समाप्त हो जायेगा तथा मनुष्य के वर्चस्व की घड़ियाँ समीप आ जायेंगी।

परिस्थिति अपने आपमें तो भयानक है ही, कालतत्व इसे और भी भयानक बनाता चला जा रहा है। एक भी जो दिन गुजरता है, गरां गुजरता है। इसलिए हमें आराम से कुछ नहीं करना है, तीव्रता से सोचना है, तीव्रता से उपाय तय करने हैं और तीव्रता से तदनुसार चलना है। हमारी विचार प्रक्रिया में हमारी चारित्रिक-

दुर्बलता, पशोपेश, अकर्मण्यता, असंवेदनशीलता आदि शताब्दियों से जमी कुरेवों को धो-पोंछ डालने की तीक्ष्णता होनी चाहिए। आसुरी शक्तियों ने सयानों के 'ब्रेन-वाशिंग' और अयानों में 'विचार-प्रतिबद्धता' ठूँसने का जो उपाय अपनाया है, उपाय तो वही है मगर उसका विनियोग व्याकुल बुद्धिनिष्ठ, भयभीत, अवसरवादियों और क्षण वादियों के द्वारा नहीं, तेजस्वी-बुद्धि के धनी, हृदयवान्, निर्भय और उत्कट पुरुषार्थ-परायण श्रेयवादियों के हाथों होना है। हमारे विचार को अपने क्षेत्र में कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त बातों के लिए उतना ही विनाशक होना है जितना स्वयं अणुबम किसी भी प्रकार की सृष्टि के लिए है और कुछ बातों में उसको रचनात्मक शक्ति वैसी कुछ होनी है, जैसी अणुशक्ति की हो सकती है। इस कथन का अर्थ यह हुआ कि 'हमारे आधुनिक संसार की समूची आधुनिकता में कदाचित् ही ऐसा कुछ मिलेगा जिसपर पर हरताल फेरते हुए झिझक हो सकती है। और खासकर उस अवस्था में जब उस हमें हरताल न फेरने का मतलब, मनुष्य की सुरक्षा और निरन्तर प्रगति में बाधा सिद्ध होने जा रही हो।

आज की वर्तमान समूची परिस्थिति का लेखा-जोखा करने के पहले ही अगर मैं कहूँ कि हमें आधुनिक विज्ञान और तकनीक को एकदम तिलांजली दे देनी चाहिए तो यह पूरी बात को जाने बिना निर्णय लेने जैसा हो जायेगा। कम से कम यह तो नहीं कहा जा सकता कि यह विनाश से बचने का एकमात्र उपाय है। फिर भी अगर लगे कि हम जगत् में विद्वेषहीन, शोषण-हीन सुसंगत जीवन-व्यवस्था को लाने में सफल नहीं हो रहे हैं तो हमें सबसे पहले अपने बड़े-बड़े यन्त्रों को तो समाप्त कर ही देना चाहिए। क्योंकि इसके बिना शासन में बैठ उन लोगों के विचार और काम करने की पद्धति में आमूल परिवर्तन नहीं लाया जा सकता जो मनुष्य की नैतिक प्रवृत्ति और मानसिक प्रक्रिया के प्रति लगभग दो सदियों से तो एक दम उपेक्षा पूर्ण रुख अपनाये रहे हैं। हमारे राजनैतिक नेता जैसे जड़ और अपरिवर्तनशील बने हुए हैं यदि वे वैसे ही बने रहे, यदि उन्होंने अपने को घेरों में बन्द रखा, वे क्रूरता को शक्ति मानते रहे, कल्पना-शीलता से उन्होंने काम नहीं लिया। आज तक वे जिस तरह चलते चले आ रहे हैं, उसी तरह आंखों पर पट्टी बांधे चलते चले गए तो वे सबके सिर पर सर्वनाश को बरपा किये बिना रह ही नहीं सकते।

अब हम इस सम्भावना के सम्बन्ध में दी गई चेतावनियों को कोरा भय का भूत मानकर गया आया नहीं समझ सकते। नोबिल-प्राइज-विजेता डा० इर्विंग

धर्म के प्रति अधिक सूक्ष्म बुद्धि होने के कारण ही शायद लियोनार्डो ने अपने द्वारा आविष्कृत पनडुब्बी, सबमरीन के सिद्धान्तों को उजागर नहीं किया था। उसने अपनी नोट बुक में लिखा था कि आदमी ऐसे आविष्कार की कुँजी हाथ में लेने की योग्यता नहीं रखता। शैतानियत उसकी बनावट का एक अंग है। अगर वह सदुपयोग के बजाय इसका दुरुपयोग करने पर उतर आया तो चारों ओर सर्वनाश ही सर्वनाश ताण्डव करता दिखाई देगा। आज के वैज्ञानिक या यन्त्र शास्त्री से ऐसे विचार-संयम, निग्रह या निरोध की कोई आशा ही नहीं की जा सकती। तथ्य की खोज में, व्यावहारिक सफलता पाने की धुन में अपने ध्येय तक जा पहुंचने की व्याकुलता में वह किसी भी रास्ते को अपनाने के लिये तैयार रहता है—भले ही वह ध्येय आदमी के अकल्याण में भयानक रूप से समर्थ क्यों न हो ? इस श्रेणी के विज्ञान-वादी और यन्त्रशास्त्री वैज्ञानिक-विचार-सरिणी से नीति-अनीति और उद्देश्य को अलग रखने की बात करते हैं और फिर-आदमी उस प्रवृत्ति को ही नैतिक और उपयोगी घोषित करते हैं, जिसे वे अपनाये हुए हैं। कठमुल्लेपन के इस कवच को भी अणुबम ने छिन्न-भिन्न कर दिया है और इसलिए हम देखते हैं कि विधि-निषेध की ओर से उदासीन अब तक के वैज्ञानिकों में भी राज्य-सत्ता के भय को अमान्य करके इक्के-दुक्के विज्ञान के उपयोग के आगे प्रश्न-चिन्ह लगाने लगे हैं।

सब कुछ सापेक्ष है, ऐसा कहकर निरपेक्ष गुणों को त्याज्य कहने वाले यन्त्र-निष्ठ वैज्ञानिक अपने जाने हुए विज्ञान और उसकी पद्धति को निरपेक्ष बना बैठे हैं। आज के आधुनिक दृष्टि सम्पन्न किसी भी व्यक्ति के सामने धर्म या नीति के किसी भी पहलू की चाहे जितनी भी निन्दा कीजिये, वह तनिक भी विचलित नहीं होगा, उसे उसके औचित्य में कहीं कोई शंका करने की आवश्यकता नहीं लगेगी, धर्म के उदात्त से उदात्त विचार अथवा समाज को टिकाकर रखने वाले निर्दोष से निर्दोष आचार को वह बिना जरा भी ननुनच किये ढकोसला मान लेगा और स्वयं भी दूसरों से ऐसा कहते हुए कदापि संकोच का अनुभव नहीं करेगा, किन्तु यदि उससे आप यह स्वयं सिद्ध बात कहें कि यन्त्रनिष्ठा विवेक-बुद्धि की हीनता को सूचित करती है, यन्त्र-निष्ठ होना मानवता के विरोध में जाना है यह कुबुद्धि तक है, तो वह इसे स्वीकार तो करेगा ही नहीं, कहने वाले को प्रगति-विरोधी, दकियानूस आदि विशेषणों से अलंकृत किये बिना नहीं रहेगा।

भौतिक-विज्ञान के दृष्टिकोण से किसी भी वैज्ञानिक के लिए यह कथन निरर्थक है कि जीवन अलौकिक, अलंघनीय, पुण्य और पवित्र वस्तु है। भौतिक-शास्त्री के लोम में जीवन नदारद है, उसकी कोई सत्ता ही नहीं है और इसलिए जीवन के मूल्यों का अगर कोई महत्व है ही तो भौतिक-विज्ञान की सफलता सिद्ध करने वाले प्रयोगों का आधार बनने में। विज्ञानवादी की पारस्परिक दृष्टि तो यही है। जैसाकि हमने अभी कहा अब ऐसे वैज्ञानिकों की एक पीढ़ी उगती दिखायी देने लगी है जिन्होंने मानवीयता से हीन नितान्त संदिग्ध मान्यताओं के आधार पर रचित लोक-दृष्टि को चुनौती दी है। विज्ञान के अपने ही क्षेत्र में इस स्वस्थ प्रतिक्रिया के विनाश की शक्तियों के आड़े आने वाले रक्षात्मक उपाय-विकासों में से एक गिना जा सकता है।

यहां विज्ञान के उस दूसरे एक विभाग की बात कर लेना आश्वासप्रद होगा जिसके प्रयोग और विनियोग जीवन के कल्याण की दृष्टि से किये जाते हैं। विज्ञान के इस विभाग का उद्‌गम चिकित्सा-शास्त्र में है। इसका मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य टिकाये रखना और बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारना है। विज्ञान के इस विभाग में एक बिल्कुल ही अलग विचार पद्धति फूली-फली है। जीव-शास्त्र (बायोलोजी) ने यह सिद्ध किया है कि सारा चेतन-संसार पारस्परिक निर्भरता की अपेक्षा रखता है, इतना ही नहीं हमारा निवास यह पृथ्वी-ग्रह जीवन के जनक ने और उसके विकसित होने की दिशा में योग्य बनने की प्रक्रियाओं में से ही गुजरता आया है और अगर हम उस पर अपनी स्वार्थ की खूटियां न ठोंकते फिरें तो वह खुद भी जीवन के परम-विकास का निधान-स्थान बनने की दिशा में विकसित होता चला जायेगा। स्वर्गीय लारेंस जे० हेन्डरसन जो जैविकी के आचार्यों में अपनी नीरन्ध्रता के लिए विख्यात है, यह सिद्ध करके दिखा दिया था कि पृथ्वी पर रासायनिक-द्रव्य जैसे और जिस अनुपात में पाये जाते हैं उनसे हम सिवाय इस निष्कर्ष के और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते कि यह धरती जीवों और उनके जीवन के विकास के लिए ही निर्मित हुई है और हम जिसे अन्धा कहते हैं उस प्रकृति की हलचल का उद्देश्य जीवनक्रम को अक्षुण्ण रखना और उन्नत बनाये चलना है।

जीव-शास्त्र की इन मान्यताओं की स्वीकृति ने जीवन-सम्पन्न छोटी-बड़ी सत्ताओं के प्रति उपेक्षा-वृत्ति को कम किया है और मनुष्य के प्रति कोमलता को बढ़ावा दिया है। मानसिक रोगों को समझने की पद्धति को खोज निकालने की

अभीप्सा ने दिखा दिया है कि स्नेह, करुणा, प्रेम और आत्मीयता व्यक्ति की सत्ता उसकी सामाजिकता उपयोगिता और मानसिक स्वस्थता को सांग और सम्पूर्ण बनाने वाले अनिवार्य और सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं। फ्रायड और उसके अनुवर्त अनेक मनस्शास्त्रियों ने वे सब सिद्धान्त प्रयोगशालाओं में सिद्ध करके दिखाये जो संसार के आध्यात्मिक पुरुषों ने अपनी पारदर्शी तेजस्वी बुद्धि से युगों पहले प्रस्तुत कर दिये थे। फ्रायड आदि ने दिखाया कि बिना स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण जन्य प्रेम के, बिना माता-पिता के मन में जागने वाले वात्सल्य-भाव के, बिना भाई चारे की भावना के अस्तित्व के लिए व्यक्ति की संघर्षशीलता अदम्य रूप धारण कर सकती थी और तनिक-सा स्वार्थ, टुक सुविधा की भावना, पति, पत्नी, माता, पिता, पुत्र, पुत्री और मित्रों को परस्पर नष्ट करने के लिए प्रेरित करने वाले तत्व बन सकते थे। जीव शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र और मानवशास्त्र में मानव-जीवन का उन्नयन और उसमें समृद्धि की सम्भावना पैदा करने में विज्ञान की गति-विधि का उद्देश्य माना गया है। मोटे तौरपर विज्ञान के सारे ही विभागों का एक अंश, सारे यन्त्र निर्माण का एक पहलू जीवन की समृद्धि और रक्षा के पक्ष में जाते हैं। जीवन की रक्षा के पक्ष में जाने वाली वैज्ञानिकता और यांत्रिकता के ये अंश और पहलू उनके अन्य अंशों और पहलुओं के सामने गौण न पड़ जायें इसीलिए संसार में अणु-विस्फोटों के विरोध में सभी जगह लोग अधिकाधिक सचेष्ट होते चले जा रहे हैं। किन्तु इस विभीषिका का सच्चा सामना करने योग्य तो हम तभी बनेंगे जब जीव-शास्त्र से सम्बन्धित विज्ञान की शाखाओं का जीवन जीने की कला में विनियोग सरल और सार्वजनिक बनाया जायेगा। राजनैतिक और नैतिक उपाय इसकी अपेक्षा लोगों का मन पकड़ने में कम समर्थ हैं, यह समझकर, इस जानकारी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

यदि अणुबम का आविष्कार इस शताब्दी में न होकर सन् १३०० के आस पास होता जो आविष्करण को क़ैद की सजा दी जाती और इस विचार के विकास का अवकाश दिये जाने का तो कोई प्रश्न हो ही नहीं सकता था। यह कथन कोई कपोल-कल्पना नहीं है। सभी जानते हैं कि रोजर बेकन ने जब अपने आप चलने वाले मोटर आदि के प्रकार के यानों और उड़ने वाली मशीनों की संभावना-भर सामने रखी तो उसके साथ यही सलूक किया गया। यह ठीक है कि आज हम सब बजाय उस काल के धर्माचार्यों के अपनी राय बेकन की तरफ़ ही व्यक्त करेंगे किन्तु

यह तो एक हद तक स्पष्ट ही है कि धर्माचार्यों की कट्टरता अन्ततोगत्वा बेकन की प्रगतिशीलता से ग्रादमी के लिए हितावह थी। ग्रेनविल से लगाकर एच० जी० वेल्स तक वे सारे तथाकथित प्रगति समर्थक इस कट्टरता से कम यथार्थवादी माने जायेंगे जिनके लेखे विज्ञान की ग्रबाध प्रगति धरती पर स्वर्ग उतारने की क्षमता रखती है। ग्रसंदिग्ध भाव से तो ग्राज यह कोई भी नहीं कह सकता कि विज्ञान स्वर्ग की जगह नरक उतार लाने का कारण कदापि नहीं बनेगा। यों यदि तेरहवीं शताब्दी में ग्रणुबम का ग्राविष्कार होता तो वह मनुष्य के लिए सौभाग्य तक ठहर सकता था क्योंकि तब लोगों में धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य के विचार रूढ़ थे। दूसरे महायुद्ध के चरम उन्मादी क्षणों में इस ग्राविष्कार ने केवल ग्रपने संहारकर्ता रूप का विकास किया ग्रौर ग्रब यह कहना कि इसके रचनात्मक उपयोग भी कम नहीं है, ग्रपने ग्राप को धोखे में बनाये रखने के ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ नहीं है।

पिछले तीस बरसों में संसार के सारे राजतन्त्र चाहे वे प्रजा सत्तात्मक हों चाहे निरंकुश तानाशाही प्रधान, ग्रशेष रूप से ग्रासुरी बन चुके हैं। नाश करने की हमारी इच्छा पर न कोई बाहरी ग्रंकुश बचा है, न भीतरी। पहले इस निर्ममता को शब्दों ग्रौर सिद्धान्तों में हिटलर स्टालिन ग्रादि के द्वारा प्रतिष्ठा दी गयी, फिर यह उनके द्वारा कार्यकलापों में उतरी ग्रौर उसके बाद ग्राज तो हालत यह है कि जो येन केन प्रकारेण शत्रु के नाश की उत्तमता में थोड़ा भी ग्रागा पीछा व्यक्त करते दिखाई देता है, उसे नक्कू बनना पड़ता है। मनों ग्रौर परिस्थितियों में यह परिवर्तन एक दो दिन में ही नहीं ग्रा गया। यहां तक कि सैनिक ग्रधिकारी भी पहले बहुत दिनों तक इसके ग्रौचित्य को नापते-तौलते सोचते समझते रहे। ग्राज भी सारी दुनिया में इस बात पर बहस होती है कि जापान पर ग्रणु-बम गिरा कर विजय पाना नैतिक काम था या नहीं। तथापि पहले विश्वयुद्ध में नागरिक ठिकानों पर हमला करना क्रूरता ग्रौर निंदनीय माना जाता था, किन्तु ग्रब यह युद्ध-कौशल का एक ग्रंग हो गया है। ग्रब युद्ध नहीं होता, समग्र-युद्ध होता है। टोटल-वार नया ग्रौर बेशर्म शब्द है। ग्रणुबम नाम के सिक्के के दो पहलू हैं। मारने की ग्रनन्त शक्ति ग्रौर मारने की सर्वथा संकोचहीन इच्छा ग्रौर उसका बखान। ग्रणु-शक्ति का यह ग्राविष्कार उसी क्षण में हुग्रा जब हमारी क्रूरता चंगेज खां ग्रादि को पीछे छोड़ चुकी थी। सिद्धान्तः सर्वनाश करने की शक्ति ग्रौर इच्छा को श्रेय मान लेने के बाद बच ही क्या जाता है? तब एक बम फेंका गया था—ग्रब क्या चीज है जो दो या चार या दस-बीस बम फेंकने से किसी को रोकेगी?

लोग प्रायः कहते हैं कि भय, पारस्परिक भय इसे रोकेगा। दो-तीन-बार विश्व-शक्तियों के पास अणवास्त्र और उन्हें फेंकने के उपाय, निक्षेपास्त्र हैं। ख़तरे की आत्यंतिकता हमें एक-दूसरे से बिना शर्त सहयोग करने पर मजबूर कर देगी। किन्तु हम देखते हैं कि अणु-शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बिना शर्त सहयोग तो दूर सशर्त सहयोग पर भी तैयार नहीं हैं। हम एक ओर अणु-शस्त्र बनाते जायें और दूसरी ओर सहयोग की बात करें तो यह दो-मुहीं चाल के सिवाय न कुछ है न कुछ मानी ही जायेगी। हमें समझ लेना चाहिये कि तरणोपाय शक्ति संतुलन में नहीं है, शक्ति-सन्यास में है। इसलिए समाज में जहां जो संयम-तत्व सक्रिय हैं, हम उन्हें देखें-परखें, सोचें, पल्लवित करें। पहले तो हम विज्ञान की शाखाओं को ही लें। विज्ञानों ने अपने-अपने क्षेत्र में कुछ मर्यादाएं प्रतिष्ठित की हैं। मर्यादा को बनाये रखने की उनकी पद्धति है, उसका उनके पास सुनिश्चित तन्त्र है। विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक अपनी-अपनी खोजों से प्राप्त-ज्ञान का परस्पर आदान प्रदान करते हैं और उनके प्रकाश में अपने प्रयोगों को अधिक निर्दोष बनाते हैं। यह अपने आप में विज्ञान का नैतिक पहलू है। फिर वैज्ञानिक तथ्यों को जांचते-परखते समय अहंभाव से नहीं विनम्रभाव से परिचलित होता है। कह सकते हैं वैज्ञानिक-पद्धति प्रयोगकर्ता को देश-काल निरपेक्ष तर्क का अनुपाया बनाती है और उसे जाति, धर्म, राष्ट्र आदि गर्वों से मुक्त होने में सहायता पहुंचाती है।

विज्ञान की खोजों में लगे हुए लोगों के सुगुण उसकी पद्धति के आवश्यक अंग हैं। ये साधन हैं। साध्य से इनकी अनिवार्य संगति हो, ऐसा नहीं है। पद्धति खोज की दिशा निर्धारित नहीं करती अपितु यह व्यक्ति के एक अंश को ही अनुशासित करती है—समग्र व्यक्तित्व को अनुशासित नहीं करती। उसके स्वभाव का अधिकांश तो जैसा का तैसा अनगढ़ और इसके प्रभाव से अस्पृष्ट, अछूता बना रह सकता है। विज्ञान और उसके तन्त्र का जो विकास हुआ है, उसके विराट् स्वरूप से दबकर वैज्ञानिक स्वयं आत्म-समीक्षा और आत्म-संयम में असमर्थता प्रकट करता हुआ पाया जाता है। पद्धति निष्ठ बेचारा वैज्ञानिक अपने आविष्कारों के फलितार्थों के प्रति उत्कंठित तक नहीं देखा जाता। भौतिक-विज्ञानों को छोड़ दीजिये, सामाजिक-विज्ञानों तक में पद्धति को अचूक और सूक्ष्म बनाने की धुन में तत्तत-क्षेत्रों में व्यस्त विद्वान् विषय की समाजोन्मुखता भूलकर लकीर की फ़कीरी में पड़े रह जाते हैं।

कई तो यहां तक मानने लगते हैं कि शुद्ध विज्ञान का मानव के हित-अहित चिन्तन से कोई वास्ता ही नहीं है।

फिर उपाय क्या है? राज्य-तन्त्र, शासन-तन्त्र, समाज-तन्त्र धर्म-तन्त्र सम्प्रदाय-तन्त्र सबका इस दिशा में उपयोग है। इन तन्त्रों में से कोई कम आसानी से तो कोई अधिक आसानी से मानव-कल्याण-निष्ठ दिशा में प्रेरित हो सकता है या किया जा सकता है। किन्तु याद रखना चाहिए कि तन्त्रों या व्यवस्थाओं या समाजों या समाजों या समूहों की अपेक्षा व्यक्ति अधिक सहज भाव और तीव्रता से जाग्रत किये जा सकते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भी व्यक्ति विशेष इस ओर रुजू किये जा सकते हैं। कुछ नाम ऐसे वैज्ञानिकों के हमारे सामने हैं जिन्होंने गणित और भौतिक-विज्ञान के द्वारा संभाव्य जगत् की उपयोगिता के आगे प्रश्न-चिन्ह लगाये हैं और कहा है कि इनके रूप और उपयोग के सांचे बदले जाने चाहिए। विज्ञान में उपयोग के सांचों का बदला जाना मानव के विकास के सहारों में एक ही सहारा होगा। सार्वभौम परिवर्तन और विकास के लिये एक साथ अनेक स्तरों पर काम किया जाना है। विज्ञान की अनुशासनशीलता और संयम-नियम के प्रति निर्मम प्रतिबद्धता हमें आदमी के तमाम ज्ञान-क्षेत्रों और कर्म-क्षेत्रों में ले जानी होगी और वह भी संस्थागत संगठनों के माध्यम से नहीं, व्यक्तिगत व्यक्ति-सम्पर्कों के माध्यम से। व्यक्ति को बिना किसी प्रकार की प्रगतिविरोधी भावना के ठीक धर्मनिष्ठता के प्रति उन्मुख बनाना पड़ेगा। 'धर्मो रक्षति रक्षतः' सुरक्षा का सर्वाधिक सत्य सूत्र है। हिन्दू धर्म, बुद्धमत, इस्लाम मत, ईसाइयत मत सभी ने आदमी के भीतर के विनाशकारी तत्वों को दूषित कर प्रेम को पनपाने की दिशा में व्यक्तियों को उभारा है।

धर्म का सबसे बड़ा उपकार आदमी को अपनी मस्तिष्क की अबाध और निरपेक्ष शक्ति के प्रति संदिग्ध बनाने में है। धर्म आदमी को सर्वशक्तिमान हो सकने के झूठे गर्व से मुक्त करता है। गर्व और मन की मौजों से उत्पन्न झूठी निश्चिन्तता से छुटकारा पाये बिना आदमी सत्य का सामना करने में समर्थ नहीं हो सकता। आदमी मानो एक कमज़ोर-सी डोंगी में पारावार में पड़ा हुआ प्राणी है। धर्म इस प्रकार अथाह बाधा-सागर के तूफ़ानों और मगरमच्छों को जानता है। आधुनिकता ने आदमी को यह कहकर भरमा डाला है कि हम अपने मस्तिष्क के बल पर सागर तो क्या समूचे खगोल को खंगाल कर दिखा देने वाले हैं—हम अपने

आस-पास की आज और भविष्य में आने वाली सभी कठिनाइयों को हल करेंगे, इसमें सन्देह की कोई गुन्जाइश बची ही नहीं है और इस तरह आधुनिक और सभ्य कहा जाने वाला आदमी पुरानी जातियों में प्रचलित विधि निषेधों को अन्धविश्वास और मूर्खता कहकर अपने दैनंदिन आचार-व्यवहार में स्वच्छन्द, अनर्गल और कदाचारी बन गया है। पिछड़ी और पुरानी जातियों के विधि निषेधों को अमान्य करना तभी ठीक है, जब वे बुद्धि की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। उन्हें अमान्य करना तब सर्वथा उचित है। विश्वास को अन्ध नहीं होना चाहिए, किन्तु अन्ध-विश्वास से ऊपर उठने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि हम उच्छृंखल हो जायें, व्यक्तिगत, सामाजिक या राष्ट्रीय स्वार्थ को सोचकर मानवता को भूल जायें। 'एव्री थिंग इज़ फेयर इन लव एन्ड वार' जैसी लज्जा-जनक उक्तियों को जीवन के ध्रुव सत्य मान लें। मानवता के अक्षुण्ण प्रवाह को खण्डित करने की सम्भावना को देखने-समझने से इन्कार कर दें। नैतिक-विधि और नैतिक-निषेध आख़िर अब तक की मानव-प्रतिभा के अनुभव-जन्य निष्कर्षों के परिणाम-स्वरूप हमें प्राप्त हुए हैं। इसलिए इस बात की व्यक्ति व्यक्ति को स्पष्ट कल्पना दी जानी चाहिए कि नैतिक विधि-निषेध वे प्राथमिक उपाय हैं जो आदमी को विज्ञान द्वारा दी गई आज की शक्ति को कल्याणकारी प्रणालियों में ही प्रवाहित होने देगी। कम से कम इस नैतिक-बुद्धि को स्वभाव में उतारे बिना कोई भी बड़ी बात व्यक्ति समाज या राष्ट्रों के वश के बाहर की बात बनी रहेगी। ज़रा-सी कठिनाई उत्पन्न होने पर वे बुरे से बुरा कदम उठाने के पक्ष में तर्क पेश करके तदनुसार आचरण करने लगेंगे। असंयम की हमारी आज की सीमा हीन प्रवृत्ति को देखते हुए छोटे से छोटे संयम को रूढ़ करने में हमें जीतोड़ प्रयत्न करने पड़ेंगे। हम देखते हैं कि अगर बाज़ार में चीनी कम हो जाये, या सिगरेटें काली कीमत पर बिकने लगें तो लोग चोरी-छुपे उन्हें प्राप्त करके लज्जित नहीं होते, प्रसन्न होते हैं? ज़रूरत से ज्यादा चीजों को खाने-खपाने की हमारी प्रवृत्ति एक मूलभूत ख़राबी है। अगर सोचें तो संसार में यदि यह अशांति का एकदम मूल नहीं तो बहुत-ही बड़ा कारण निस्सन्देह है। यही अन्तर्राष्ट्रिय बाज़ारों के स्पर्धा और उससे उत्पन्न कटुता और फिर युद्धों को जन्म देता है। हमारे मानसिक शारीरिक आर्थिक और आध्यात्मिक विनाश की जड़ में हमारी अति संग्रही प्रवृत्ति कुंडली मारकर बैठी है और इसको जहाँ कोई छूने गया कि इसने फन फैला-कर मरणान्त दांत मारे।

बुद्धि और न्याय संगत रोकथाम, संयम, विधि-निषेध आदमी के बने रहने की शर्तों में बहुत महत्वपूर्ण हैं, इसे याद रखे बिना काम चलने वाला नहीं है। यदि व्यक्ति-व्यक्ति अपने रोजमर्रा जीवन में इन्हें संकल्प-पूर्वक आचारित करते हुए सोद्देश्य त्याग बलिदान और सेवा-वृत्ति को अपना स्वभाव बना ले तो समूह, समाज जाति, सम्प्रदाय और देश इससे अछूते नहीं बच सकते। इस बात पर चाहे जितना ज़ोर देना कि हमारे संयम को विज्ञान द्वारा प्रदत्त हमारी शक्ति के अनुपात में बढ़ाया जाना चाहिए अतिशयोक्ति पूर्ण तो कभी हो ही नहीं सकता क्योंकि विज्ञान द्वारा प्रदत्त हमारी आज की शक्ति अंकगणित की गति से नहीं ज्यामिति की गति से बढ़ती चली जा रही है और यह गति भी शायद उसे नापने या कूतने के लिए अपर्याप्त है। मनुष्य की जिस अवचेतन-चित्तशक्ति ने विकृत होकर नगरों और देशों को समूल नष्ट करने में किसी भी प्रकार का आगा-पीछा महसूस करना बन्द कर दिया है यदि हमने अवचेतन की उसी वृत्ति को तत्पर और सजग रहकर व्रतनिष्ठ संकल्पनिष्ठ त्यागनिष्ठ स्वार्थ-हीन उदार और सहर्ष कष्ट सहने में उत्साह युक्त नहीं बनाया तो हमारे संयुक्तराष्ट्र आदि संस्थागत नियम कागज पर लिखे पड़े रह जायेंगे और हिरोशिमा, चैकोस्लोवाकिया, वियतनाम तथा बंगला देश जैसी दमन की घटनाएं धडल्ले से होती चली जायेंगी। आक्रमण और दमन की शक्ति को प्रेम और सेवा की शक्ति में बदला जाना है और त्याग के बल पर पशु-शक्ति को प्रेममय सेवा में दत्तचित्त बना देना है। हमने रोज-रोज, बल्कि अनुक्षण अपने को चारों तरफ से घूम-घूमकर जांचते रहना है और इस बात को पक्का करते रहना है कि हम आदमी ही आदमी बनते चले जा रहे हैं, अपने पशुत्व को हम निरन्तर कमजोर बनाते चले जा रहें हैं। हमारा एक भी कदम, एक भी टेव एक भी इच्छा हमारी समीक्षा के परे न रहने पाये, किसी भी संस्था या सत्ता की बात को हम अविचारणीय और अलंघ्य और अनिवार्य न माने क्योंकि हमें समझ लेना है कि समूचे मानव का कल्याण इस या उस दल के वश की बात नहीं है। हमारा श्रेष्ठ संकल्प और आचरण भी आज की भयानक परिस्थिति में अपर्याप्त हो सकता है, फिर उससे तनिक भी न्यून का उपयोग करने की बात तो मानवता के प्रति दगाबाज़ी से कम कुछ नहीं है।

लेविस मम्फार्ड केवेल्यूज़ फ़ार सरवाइविल के आधार पर

आलोचना

डा० रामप्रसाद मिश्र

● दिल्ली विश्वविद्यालय के डी. ए. वी. कॉलिज में हिन्दी के प्राध्यापक, कवि, आलोचक तथा उपन्यासकार; सम्प्रति भारतीय साहित्यकार संघ के कार्य समिति के सदस्य।

————

आलोचना साहित्य की अन्तिम विधा है। साहित्य की आत्मा कविता है; सर्वप्राचीन, सर्वमान्य, सर्वप्रिय। नाटक साहित्य एवं कला का सार-रूप है; काव्येषु नाटकं रम्यं। इसमें कविता, कथा, सम्वाद, रंगमंच, अभिनय, संगीत इत्यादि का समाहार दृष्टिगोचर हो जाता है। उपन्यास, कहानी तथा निबन्ध में भी सृजनात्मक सामर्थ्य की अपेक्षा होती है। आलोचना इन-सब से भिन्न है। उसका निर्माण इन-सब के मूल्य पर होता है। आलोचना साहित्य का साहित्य है। आलोचक परोपजीवी साहित्यकार होता है। आलोचना के विकास ने सृजनात्मक साहित्य को हानि पहुंचाई है; अनेक व्यक्ति एव छात्र केवल आलोचना पढ़कर साहित्यवेत्ता बन जाते हैं, साहित्य तक जाने की कठिनाई से बचकर भी काम बख़ूबी निकाल लेते हैं। किन्तु आलोचना साहित्य के गहन तथ्यों के उद्घाटन एवं प्रतिपादन में उपयोगी सेवाएं भी करती रहती है। कारयित्री प्रतिभा का विवेचन-विश्लेषण भावयित्री प्रतिभा के द्वारा पुराकाल से हो होता आ रहा है। भरत, प्लैटो, अरस्तू, मम्मट इत्यादि ने साहित्य के विवेचन-निर्देशन में पर्याप्त कार्य किया है। प्राय: असफल कवि आलोचक बन जाता है। यदि वह कुण्ठामुक्त हुआ तो कविता इत्यादि का विवेचन भी कर सकता है, दिशा-निर्देशन भी। आलोचना सृजनात्मक साहित्य नहीं है, किन्तु यत्र-तत्र उसमें सृजनात्मकता के दर्शन भी हो जाते हैं। अनेक कवि एवं सृजनात्मक विधाओं के साहित्यकार आलोचना से लाभ भी उठाते हैं। प्राचीन एवं मध्यकालीन

भारतीय आलोचना कवि-कर्म में अतीव सहायक सिद्ध होती रही है। रस विवेचन, अलंकार-निरूपण, छन्द-विश्लेषण इत्यादि से कवियों को लाभ होता रहा है। कालिदास ने भरत को स्वर्ग की नाट्यशाला का निर्देशक पद प्रदान करके वास्तव में उस महान् आचार्य के प्रति कवियों एवं नाट्यकारों की सम्मान-भावना व्यक्त की है। पिंगल के प्रति सम्मान-भाव इसी तथ्य का सूचक है।

प्राचीन भारतीय आलोचना का उद्देश्य सृजनात्मक प्रतिभा का सम्यक् विवेचन एवं कवियों को सजग बनाए रखना था। रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति एवं औचित्य सम्प्रदाय एक-दूसरे के पूरक हैं। भरत, भामह, नन्दवर्द्धन, वामन, कुन्तक एवं क्षेमेन्द्र प्रभृति आचार्यों का उद्देश्य साहित्य के अनुशीलन को गम्भीर बनाना तो था ही, साहित्यकार को सजग और मर्यादित रखना भी था। अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ का भी मूल उद्देश्य यही था। साहित्य एवं साहित्कार इन सबके ऋणी हैं। किन्तु हिन्दी-आलोचना पर यह बात नहीं लागू होती। हिन्दी-आलोचना का विकास, विश्वविद्यालयों को ध्यान में रखकर हुआ है। हिन्दी-आलोचना प्रायः समग्र रूप में विश्वविद्यालयों की बन्दिनी है। उसे विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य एवं वास्तविक साहित्य-रसिकों एवं स्रष्टा-साहित्यकारों का ध्यान ही नहीं रहा।

हिन्दी-आलोचना का सबसे बड़ा दौर्बल्य उसका कृतित्त्व-प्रधान न होकर व्यक्तित्व-प्रधान रूप है। अधिकांश आलोचक कृति पर नहीं, व्यक्ति पर रीझे हैं, जिसके पीछे कभी-कभी जाति, क्षेत्र, बिभाषा, दल इत्यादि के प्रभाव तक विद्यमान रहे हैं, मैं यह नही कहता कि ऐसा दौर्बल्य अन्यत्र नहीं हैं। किन्तु जहां भी हो यह वरेण्य नहीं है। व्यक्तिपूजा और आलोचना दो भिन्न वस्तुएं हैं। आलोचना का अर्थ है कृति तथा कृतिकार का पूर्ण अनुशीलन। शतशः गुणमय अथवा शतशः अवगुणमय इस जगत् में कुछ भी नहीं है। अतएव, आलोचक को आलोच्य के सत्य का उद्घाटन सम्पूर्ण-दृष्टि से करना चाहिए, एकांगी से नहीं। तुलसी, सूर, कबीर, प्रसाद प्रभृति महाकबियों का विवेचन अभी सम्पूर्ण-दृष्टि से नहीं हो पाया; वह स्तुतिप्रधान है।

हिन्दी-आलोचना का दूसरा दौर्बल्य पूर्ववर्ती आलोचकों के खण्डन के आधार पर अपना मण्डन है। रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्रबन्धु की सामग्री का भरपूर उपयोग करते हुए उनको धराशायी करना आवश्यक समझा यद्यपि यह निर्बिवाद सत्य है कि

हिन्दी के आलोचना-भवन का आरम्भिक निर्माण मिश्रबन्धु ने किया था। नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और नगेन्द्र ने, इसी परिपाटी पर चलते हुए, शुक्ल जी को धराशायी करने के प्रयास किये। यह ध्वंसात्मक प्रवृत्ति है। इससे कोई तलस्पर्शी लाभ की नहीं है क्योंकि कार्यकर्त्ता का वह स्मारक है जिसे धराशायी नहीं किया जा सकता।

इस सब के बावजूद हिन्दी-आलोचना गतिशील अवश्य हुई है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और नगेन्द्र हिन्दी के प्रमुख आलोचक माने जा सकते हैं। मिश्रबन्धु का कार्य आरम्भिक और आरम्भिक स्तर का था। किन्तु वह इतना व्यापक है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और नगेन्द्र की आलोचना प्रौढ़ एव विद्वत्तापूर्ण है। इस मौलिकता का स्तर भी उच्च है। किन्तु उपर्युक्त दौर्बल्य इसमें भी विद्यमान है।

रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सर्वाधिक प्रभावशाली आलोचक माने जा सकते हैं। साहित्य के इतिहास में उनका काल-विभाजन, चाहे वह ठीक हो या नहीं, प्रचलित है। आलोचना के व्यापक आयामों का उद्घाटन पहले-पहल उन्होंने ही किया था। रस-सिद्धान्त पर प्रौढ़ स्तर के कार्य का आरम्भ भी उनके द्वारा ही किया गया था। इतने व्यापक कार्य में अनेक त्रुटियां स्वाभाविक हैं। शुक्ल जी ने तुलसी और जायसी पर उच्चस्तरीय आलोचना-ग्रन्थ रचे हैं। किन्तु ये प्रशस्ति-प्रधान ही हैं। तुलसी के परशुराम-लक्ष्मण संवाद, अंगद-रावण,संवाद, नारी-प्रसंग, शूद्र-प्रसंग, पुनरुक्ति-प्रसंग, काल-दोष इत्यादि की यथेष्ठ आलोचना शुक्ल जीं नहीं कर सके। इसी प्रकार जायसी के पुराण-अज्ञान, नारद-अवमूल्यन, देव-निन्दा इत्यादि बिन्दुओं पर भी वे यथेष्ठ प्रकाश नहीं डाल सके। इसलिए, उनकी आलोचना बहुत दूर तक एकपक्षीय है। शुक्लजी का वैदिक वाङ्मय एवं इतिहास का ज्ञान उनके स्तर को देखते हुए अपर्याप्त था, इसके प्रमाण उनके आलोचना-साहित्य में सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। समसामयिक साहित्य पर उनका कार्य अपना महत्त्व बहुत शीघ्र ही खो बैठा, इसका कारण एतद्विषयक संवेदन-अभाव था। उनके व्यंग्य यत्र-तत्र प्रहार का रूप धारण कर लेते हैं। इन कारणों से उनके साथ महान् विशेषण लगाने में कभी-कभी झिझक होने लगती है।

नन्ददुलारे वाजपेयी छायावादी-साहित्य, विशेषतः कविता का प्रौढ़ मूल्याङ्कन करने वाले प्रथम आलोचक थे। किन्तु उनकी आलोचना भी छायावाद की स्तुति एवं अन्य की निन्दा से आगे नहीं बढ़ सकी। छायावाद एक शिल्पप्रधान आन्दोलन था; निस्सन्देह उसके पास एक अनुभूति-लोक था, किन्तु उसका प्रमुख गुण उसका शैली-शिल्प था। छायावाद का दर्शन न युगानुरूप था, न व्यावहारिक; इसी से वह अधिक समय तक स्थिर न रह सका और स्वयं उसके कर्णधार ही उससे अलग हट गए। छायावादी कविता- अपने अधिकांश कलेवर में, सुकुमार है। महानगर कविता के लिए जो तत्त्व चाहिए, उनमें से कुछ ही उसे प्राप्त हो पाए थे। नन्ददुलारे की हरिऔध, मैथिलीशरण और प्रेमचन्द की आलोचना तृतीय श्रेणी की है। हिन्दी के प्रमुख आलोचकों में नन्ददुलारे साहित्य पर सबसे कम प्रभाव डाल सके। उनकी विद्वत्ता उनके पूर्वग्रह से आक्रान्त हो उठी।

हजारीप्रसाद ने सृजनात्मक साहित्य एवं आलोचना के क्षेत्रों में पर्याप्त सफलता पाई है। 'कबीर' और 'नाथ-सम्प्रदाय' उनके अगाध पाण्डित्य के स्मारक हैं। किन्तु इनमें भी वे स्तुति से ऊपर बहुत कब उठ पाए हैं। कबीर इत्यादि सन्त भारत में इस्लाम के आने के परिणाम थे। उनका व्यापक एवं शुभ प्रभाव भी पड़ा। किन्तु उनकी सीमाएं स्पष्ट थीं। निरक्षर कबीर की वेद-निन्दा शतशः अनुत्तर-दायित्वपूर्ण थी। वेद में उच्चतम श्रेणी का साहित्य एवं काव्य प्राप्त होता है। फिर, वेद में अस्पृश्यता का कोई प्रतिपादन नहीं दृष्टिगोचर होता। वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता भिन्न वस्तुएं हैं। हजारीप्रसाद ने इस महत्त्वपूर्ण दिशा की ओर ध्यान नहीं दिया। नाथ-सम्प्रदाय की अन्तस्साधना ने जीवन के बाह्य की जो उपेक्षा की, बिना पढ़े-पढ़ाए वेद-पुराण इत्यादि की जो निराधार निन्दा की, उससे तुलसीदास परिचित थे, पर हजारीप्रसाद नहीं। हजारीप्रसाद की कबीर-स्तुति यत्र-तत्र नेताओं के भाषणों की स्मृति दिला देती हैं। नन्ददुलारे छायावाद में बँध गए, हजारीप्रसाद सन्त-साहित्य में। उनकी सीमाएं स्पष्ट हैं।

नगेन्द्र हिन्दी के प्रौढ़ एवं सन्तुलित आलोचक हैं। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में उनका कार्य सदैव स्मरणीय माना जाएगा। 'रस-सिद्धांन्त' उनका प्रौढ़ ग्रन्थ है; अनेक विवादास्पद बिन्दु इस ग्रन्थ की व्यापकता के सूचक हैं। साधारणीकरण पर नगेन्द्र का कार्य प्रायः सर्वस्वीकृत हो चुका है। छायावादी कविता की उन्होंने जो समीक्षा की है वह नन्ददुलारे की समीक्षा के सदृश एकपक्षीय नहीं है। उन्होंने

मैथिलीशरण इत्यादि के प्रति तथ्यसंगत दृष्टिकोण का परिचय दिया है किन्तु कामायनी के प्रसंग में वे भी स्तुति की सीमा तक पहुँच ही गए। कामायनी एक सुकुमार महाकाव्य है। उसकी पात्र-संख्या, उसका कथानक-क्षेत्र, उसके वर्ण्यविषय, उसका निवृत्तिपरक दर्शन इत्यादि उसे प्रथम श्रेणी के महाकाव्यों की पंक्ति में नहीं आने देते। निस्सन्देह कामायनी आधुनिक हिन्दी की महान् उपलब्धि है; कोई आधुनिक ग्रन्थ उसकी समता नहीं कर सकता। किन्तु उसकी सीमाएं स्पष्ट हैं। उन पर उचित प्रकाश नहीं डाला जा सका। किन्तु नगेन्द्र ने हिन्दी-आलोचना को एक प्रौढ़ एवं अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित बिन्दु तक पहुंचा दिया है, इसमें सन्देह नहीं।

मैं उस दिवस की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब हिन्दी-आलोचना आलोच्य के प्रति शतशः पूर्वग्रह-विहीन होकर उसका सम्यक् उद्‌घाटन करने लगेगी। आलोच्य से अभिभूत होना अथवा उसके प्रति आक्रोश रखना उच्चतम आलोचना तक जाने ही नहीं दे सकता। निस्सन्देह उच्चतम आलोचना अभी अन्यत्र भी अत्यन्त अल्प परिमाण में ही प्राप्त होती है। किन्तु भारतवर्ष में वह अभी दुर्लभ-सी वस्तु लगती है। संस्कृत की आलोचना में ऐसा नहीं है। इसलिए, संस्कृत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुत्री हिन्दी इस दिशा में अवश्य आगे बढ़ेगी, ऐसी आशा है। आलोचना हमारे साहित्य की नवीनतम विधाओं में एक है। लगभग साठ वर्षों के अपेक्षाकृत लघु इतिहास में उसकी जो प्रगति हुई है उसको देखते हुए उपर्युक्त आशा निराधार नहीं कही जा सकती।



कालिदास का उपमाशिल्प

डा० सीताराम सहगल

● कालिदास साहित्य के विशेषज्ञ,
भूतपूर्व अधिकारी, पूर्वी एशिया प्रसारण-विभाग, आकाशवाणी

——

होनहार पुत्र की तरह सच्चा कवि अपनी विरासत को कभी नहीं भूलता। विश्व कवि टैगोर ने अपने पूर्ववर्ती सूरियों को बारबार अपना अर्घ्य प्रदान किया है। उनकी कालिदास को अर्पित हुई चार अञ्जलियां प्रसिद्ध हैं। कविकुल गुरु कालिदास ने भी वैदिक विरासत का गान यत्र तत्र किया है और उन मनोहारी वर्णनों से कविता की तिथि सुरक्षित हुई है। रघुवंश महाकाव्य (२, ४) में लिखा है कि पतिव्रता सुदक्षिणा महाराज दिलीप के पीछे ऐसे चलती थी जैसे श्रुति के पीछे स्मृति अनुयन करती है। इस उपमा के पीछे कालिदास ने संक्षेप में देश की विरासत के प्रति अपने को ऋणी कहा है। उनके सारे ग्रन्थ वैदिक मान्यताओं की सरल व्याख्याएँ हैं। कवि अपनी बात को नपी तुली भाषा में कहने का आदी है। उत्तरकालीन आचार्यों ने उसे व्यञ्जना कहा है और अलङ्कार के ग्रन्थों में उसकी अनेक विधि व्याख्या की गई है। मम्मट से लेकर पण्डिराज जगन्नाथ तक कई सौ ग्रन्थ और उन पर हजारों टीकाकारों ने शब्द की वृत्ति पर टीकाएं लिखी हैं। वेदों के अतिरिक्त कवि ने आदि-कवि वाल्मीकि का भी हार्दिक अभिनन्दन किया है। रघुवंश के आदिम श्लोक उससे अनुगुञ्जित हैं : "पूर्ववर्ती सूरियों द्वारा वर्णित काव्यरूपी द्वार वाले सूर्यवंश के वर्णन में मणियों को छेदने वाली हीरे की कनी से विंधी हुई मणि में सूत्र की तरह मेरी गति है।

महाकवि उपमा विधान के लिए जगत्प्रसिद्ध है। क्या कालिदास में उपमा सृष्टि मौलिक कल्पना है ? नहीं। वाल्मीकि में भी पूर्णोपमाओं का प्रयोग हुआ है।

कवि ने उसी अलङ्कार में अपनी नवनवोन्मेषिणी कल्पना से महक भर दी है। कवि अपने पूर्वसूरि वाल्मीकि का कहां तक ऋणी था इसे हमने ऋतुसंहार के १९४४ में लाहौर से प्रकाशित संस्करण में विस्तार से लिखा था। क्या वाल्मीकि ने ही सर्व प्रथम उपमाओं की कल्पना कीथी ? नहीं नहीं। विश्व के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद में जो उपमा-विधान मिलता है वह किसी माप-दण्ड से कम आकर्षक, कम सरस और कम चेतोहारी नहीं है। आइए एक उदाहरण से बात स्पष्ट करें। उषः सूक्त का एक मन्त्र इस प्रकार है।

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्
मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारो—
च्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः (ऋक् ४, ५१, २)

अर्थात् इन्द्रधनुषी उषा पूर्व दिशा में यज्ञों में सजाए गए स्तम्भों की तरह खड़ी हैं। चमकते हुए उन्होंने अन्धकार के दोनों दरवाजे खोल दिए हैं। ये उषाएं चमकीली और पवित्र हैं।

उपरोक्त वर्णन में उपमाऽलङ्कार के चारों तत्व मिलते हैं—उषा उपमेय है; यज्ञस्तम्भ उपमान है, इव तद्वाचक शब्द और 'अस्थुः' साधारण धर्म है। आजकल घरों की सजावट में जिस प्रकार फर्नीचर में 'सोफा' का स्थान है उसी प्रकार प्राचीनकाल में यूप गाड़ने की क्रिया होती थी। "अस्थुः" क्रिया ने एक चित्र उपस्थित कर दिया है, जैसे यूप को गाड़ने में उसकी 'दर्शनीयता' बढ़ जाती है वैसे ही प्रातः कालीनउषा मानों हमारे सामने इन्द्र धनुषी रूपधारण करके उपस्थित होती है 'उषसः' बहुवचन में प्रयुक्त है उसी तरह 'मिताः' भी बहुवचन है। ऋग्वेद काल में सचमुच ऐसी कल्पना करना एक दिव्यसृष्टि थी। इस शिल्प विधान की व्याख्या निरुक्त के प्रणेता यास्कमुनि ने येनोपमिमीते (१, ४) शब्दों से की है जिससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में इसकी परम्परा सुप्रतिष्ठित थी।

इसी शिल्पविधान को कालिदास ने अपने काव्यों में संजोया है। उदाहरणार्थ सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नव-मालिकाकुसुमम् (शाकुन्तल २, ८)

अर्थात्- सुना जाता है कि उसकी मां कोई अप्सरा थी, वह जब इसे जंगल में छोड़कर चली गई तो मुनि ने उसका पालन- पोषण किया। इससे वह उनकी सन्तान कही जाती है। यह तो ठीक ऐसा ही हुआ मानो नवमल्लिका का फूल अपनी डाली से चू कर मदार के ऊपर गिर पड़ा हो।

उपरोक्त वर्णन में कवि ने अपनी पैनी कल्पना का परिचय दिया है और संस्कृत भाषा की सौरभश्री समृद्ध हो उठी है। इसमें अपत्यम् उपमेय है और कुसुमम् उपमान है इव तद्वाचक शब्द तथा च्युतम् साधारण धर्म है। सुरयुवति संभवम् में तीन पद है और नवमालिका कुसुमम् में भी उतने ही पद हैं। दोनों में षष्ठीतत्पुरुष-समास है। 'मुनेः' में यदि षष्ठी विभक्ति का प्रयोग है तो 'अर्कस्य' में भी वही विभक्ति है। मुनि के वर्णन में कवि ने अर्कस्य पद द्वारा उसके शरीर की बनावट का चित्र खींच दिया। जैसे मदार का पेड़ साधारणतया सूखा, अनाकर्षक और सांसारिक तड़क-भड़क से दूर होता है वैसे ही कण्वमुनि सांसारिक प्रलोभनों से ऊपर उठा हुआ है। जैसे उद्यान में फूल को उठाकर कोई दयालु व्यक्ति देव मन्दिर में ले जाता है वैसे ही कण्व मुनि ने भी अप्सरा द्वारा छोड़ी हुई सन्तान को अपनाया और उसका पालन पोषण किया। इससे प्राणिमात्र में करुणा की भावना की गहरी ध्वनि मिलती है।

वैदिक काल में उपमा शिल्प का विकास जो हुआ था गुप्तकाल में उसे चार चांद लगा दिए गये। 'उषसः' स्त्रीलिङ्ग बहुवचन है परन्तु मिताः (यूपाः) पुल्लिङ्ग बहुवचन है जो निर्दोष प्रयोग नहीं माना जा सकता। कालिदास की सृष्टि में सहज आकर्षण और पूर्णता है।

कवि के किसी भी वर्णन को पढ़ें उसमें सहज स्पर्श हृदय को मोह लेता है। अज-इन्दुमती के स्वयंवर में कवि ने एक श्लोक गाया है:—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रयेदे दे
विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

(रघुवंश ६, ६७)

अर्थात् पति को स्वयंवर मे चयन करने वाली इन्दुमती रात्रि में चलती हुई दीपक की लौ की तरह जिस जिस राजा को पीछे छोड़कर आगे बढ़ती गई वह वह राजा सड़क की अट्टालिका के समान उदास होता गया।

यहां सा (इन्दुमती) उपमेय है और (दीपशिखा) उपमान है। व्यतीयाय साधारण धर्म और इव तद्वाचक शब्द है। जैसे २ सड़क पर दीपशिखा के उजियाले में व्यक्ति क्षण भर के लिए हर्षित होता है और फिर उसपर कालिमा जैसी छा जाती है वैसे ही इन्दुमती जिस राजा के पास से गुजराती थी क्षणभर के लिए वह सौभाग्य-श्री की मुस्कानसे अपना अहोभाग्य समझता था कि शायद वह उसे ही वरण करेगी। उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठता था परन्तु जैसे ही वह आगे बढ़ती थी तो वही राजा उदासी के समुद्र में डुबकियां लेने लग जाता था। उसके उदास मन की गति रुकने लग जाती थी। प्रकृत चित्र इतना हृदयग्राही और सरस है कि पाठक का हृदय भी हर्ष और विषाद की दोला में दोलायमान होने लग जाता है। कवि ने देश की हृदयस्पर्शिनी परम्पराओं को समृद्ध किया है। उसका प्रत्येक वर्णन अन्तः स्पर्श की खान है। यह श्लोक इतना प्रसिद्ध हुआ कि कवि 'दीपशिखः कालिदासः' इस विरुद से विभूषित हो गया।

एक और उदाहरण प्रस्तुत है —

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ (रघुवंश १,१)

अर्थात वाणी और अर्थ की तरह अलग २ होते हुए भी नित्य मिले हुए संसार के माता पिता पार्वती और परमेश्वर को मैं (कालिदास) वाणी और अर्थ की प्राप्ति के लिए प्रणाम करता हूँ।

इस में पितरौ पार्वती परमेश्वरौ उपमेय है और वागर्थौ उपमान है। वन्दन साधारण धर्म और इव तद्वाचक शब्द है। पार्वती परमेश्वरौ और वागर्थौ दोनों में द्वन्द्व समास और द्विवचन है। वाक् स्त्रीलिङ्ग है तो पार्वती भी स्त्रीलिङ्ग है अर्थ पुल्लिग है तो परमेश्वर में भी वही लिंग है।

ऐसी सुघड़ उपमाएँ सम्भवतः संस्कृत के अन्य कवि में नहीं मिलेंगी। प्रकृत वर्णन इतना प्रभावशाली था कि उसकी पकड़ ने अन्य क्षेत्रों के शिल्पियों को भी

नहीं छोड़ा। छटी शताब्दी में बदामी गुफाओं को तराशने वाले मूर्तिकारों ने इसी श्लोक को उन पत्थरों में गुंजा दिया।

उत्तरकालीन आचार्यों ने कालिदास को सरस्वती का अवतार माना। कवि ने जो कुछ लिखा वह उसके हृदय का गुंजन है उसमें शब्दाडम्बर तथा पिष्टपेषण का कोई स्थान नहीं जो हमें भवभूति के नाटकों में अनायास उपलब्ध होता है। कवि की कविताको मम्भटाचार्य ने भारती कहकर सम्मान दिया। भारती का अर्थ भारत की मिट्टी और हवा में विकसित काव्य रूपी पौधा है। काश्मीर जो भू लोक का स्वर्ग है उसमें जन्मे आचार्य ने अपने काव्य प्रकाश मे कितना सुन्दर कहा है:—

नियति कृत नियमरहितां ह्लादैक्मयीमनन्य परतन्त्राम्।
नवरस रुचिरां निर्मितमादधती भारती कवेर्जयति ॥

अर्थात्—कवि की सृष्टि विधि के विधानों से दूर, सदा प्रसन्न करने वाली' स्वतन्त्र, नवरसों से मनोहारी होती है। कवि की सृष्टि प्रजापति से अधिक ह्लाद्-मयी है उसकां जयकार हर युग में अवश्यम्भावी है। कवि की सृष्टि प्रजापति से अधिक ह्लादमयी होती है। आगे काव्य के प्रयोजनों की गणना में आचार्य ने लिखा है-कालिदासादीनामिव यशः। काव्य यश केलिए लिखा जाता है।

जैनमत के सुप्रिसद्ध हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है-यशस्तु कवेरेव। इह इयति संसारे चिरातीता अप्यद्य यावत् कालिदासादयः सहृदयैः स्तूयन्ते कवयः।

अर्थात्—कवि ही यश का भागी होता है यद्यपि हजारों वर्षों से साहित्य सृष्टि हो रही है तथापि आलोचक कालिदासादि कवियों की ही हृदय खोलकर स्तुति करते हैं। सच्चे कवि के साहित्य में देश की माटी के गीत गूंजते हैं और उसकी सृष्टि देश और काल की सीमाओं को लांघकर अमर बन जाती है।

:————:

बूंदी में प्राप्त कुछ दुर्लभ तान्त्रिक प्रतिमाएं

—जोगेन्द्र सक्सेना

● वैज्ञानिक एवम् औद्योगिक अनुसंधान परिषद् में सहायक सूचना-अधिकारी, लोक-कला और लोक-संस्कृति के अध्येता

———

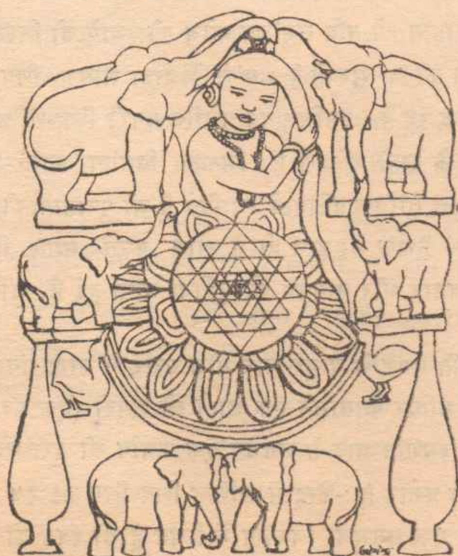
बूंदी के पुरातत्व की यदि समुचित खोज की जाये तो निस्सन्देह बड़ी महत्व पूर्ण सामग्री उपलब्ध की जा सकती है। बूंदी के हाड़ा शासक शिव और शक्ति के समान रूप से उपासक रहे हैं। इसलिए यह प्राचीन नगरी शिव-शक्ति के मन्दिरों से भरी पड़ी हैं। बूंदी के इन्हीं मन्दिरों में, जिनका निर्माण काल सं० १३६१ से आरम्भ होता है, कुछ तांत्रिक प्रतिमायें स्थापित हैं जो पुरातत्व की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण हैं। उदाहरणार्थ लेखक को हाल ही में खोज करते समय शिव, गजलक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्मा, दशावतार और नागपेच की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, जो उल्लेखनीय हैं।

शिव की मूर्ति नगर के बाहर चार मील उत्तर में बाण गंगा के किनारे पर स्थित केदारेश्वर के मन्दिर के सामने एक छोटी सी छतरी (एक मण्डप) में प्रस्थापित है। मन्दिर नगर के श्मशान घाट से लगभग एक फलांग की दूरी पर है। इस शिव लिंग का विन्यास इस प्रकार है :-केन्द्र में खण्डित शिव लिंग जो १५ से २० सैं० मी० ऊंचा है। शिव लिंग एक समभुजी त्रिकोण में स्थित है जो स्वयं दो समभुजी संपुटित त्रिकोणों से बने एक षट्कोण के अन्दर स्थित है। षट्कोण को घेरता हुआ एक अष्टदल कमल है जो चतुर्भुजी योनी अथवा वेदीं पर रखा हुआ है। योनी लगभग ५ सें० मी० गहरी तीन मेखलाओं से अवेष्ठित है। केन्द्रवर्ती त्रिकोण का शीर्ष इस वेदी के द्वार की ओर है, जो केदारेश्वर के मन्दिर के सम्मुख है।

गजलक्ष्मी

गजलक्ष्मी की प्रतिमा नवल सागर तालाब की पाल पर बने शिव-मन्दिर में स्थित है। इस मन्दिर में कुल पांच प्रतिमाएं हैं : मध्य में शिव, उनके पृष्ठ पर दक्षिण में दीप स्तम्भ पर एक छोटी पार्वती की मूर्ति, दक्षिण पश्चिम में गणेश, पश्चिम में गजलक्ष्मी तथा पश्चिम उत्तर में पार्वती की दूसरी पाषाण प्रतिमा। शिव और प्रथम काली (पार्वती) का मुख ठीक उत्तर में है जब कि अन्य तीन प्रतिमाओं का पूर्व में। मन्दिर का प्रवेशद्वार पूर्व में है और उसके सामने शिव वाहन नन्दी स्थापित है। इस प्रकार इस मन्दिर में हमें शिव, पार्वती, लक्ष्मी और गणेश का अपूर्व संयोजन मिलता है। लक्ष्मी का शिव के साथ होना आश्चर्यजनक है, किन्तु इस आशचर्य के समाधान के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं हैं।

मूर्ति का परिचय



उक्त गजलक्ष्मी की प्रतिमा लगभग ६० सें०मी० लम्बे, ६० सें०मी० चौड़े और १५ सें०मी० मोटे श्वेत प्रस्तर-खण्ड पर उकेरकर बनाई गयी है। निःसन्देह यह कारीगरी का अनुपम उदाहरण हैं। लेखक ने ऐसी भव्य प्रतिमा इससे पूर्व कहीं और नहीं देखी। मूर्ति का परिचय इस प्रकार है —

मध्य मैं एक सद्य : स्नाता षोड़शी बैठी दोनों हाथों से अपनी खुली हुई केश-राशि को सम्हाल रही है। उसका भाव जलसिक्त वेणी को निचोड़ने का है। षोडशी का केवल ऊर्ध्व भाग ही दिखाया गया है, अधोभाग श्रीचक्र अथवा श्रीयंत्र में विलीन हैं जो पूर्ण विकसित कमल के मध्य में बनाया गया है, कमल के केवल षोडश दल-दिखाए गए हैं। प्रथम अष्टदल पूर्ण चक्र में मध्यवर्ती यंत्र को आवेष्ठित करते हुए तथा द्वितीय अष्ट-दल अर्धवृत्त में नीचे की ओर अंकित है। इसके अतिरिक्त युवती आजू-बाजू और नीचे की ओर गजों से घिरी हुई है। साथ में दो हंस भी प्रदर्शित हैं।

लक्ष्मी के साथ साधारण तौर पर दो ही हाथी दिखाए जाते हैं, चार हाथी तो कहीं-कहीं चित्रों में देखने को मिलते हैं। किन्तु इस प्रतिमा में तो पूरे आठ हाथी हैं, जिनमें से कोई जल चढ़ा रहा , कोई पुष्प चढ़ा रहा है, कोई उन्हें एकत्र कर रहा है, तो कोई नीचे से ऊपर पहुँचा रहा है। इस प्रकार सभी अपने-अपने कार्य में संलग्न दिखाए गये हैं। हाथियों के तीन स्तर हैं, ऊपर, नीचे और मध्य। ऊपर वाले स्तर में युवती के दोनों ओर दो-दो हाथी दिखाये गए हैं, जिनमें बाईं ओर वाला प्रथम हाथी जल चढ़ा रहा है जब कि दोनों ओर के पृष्ठ वाले हाथी पुष्प। दाहिनी ओर के प्रथम हाथी का भाव नीचे से कुछ लेने का है। मध्यवर्ती हाथियों का भाव जो कुछ वे नीचे से प्राप्त करते हैं, उसे ऊपर पहुंचा देने का है। इस प्रकार लेने, देने और चढ़ाने का यह क्रम अनवरत रूप से गतिमान् है । कहीं भी अलसता, कहीं भी शिथिल भाव दृष्टिगोचर नहीं होता। सभी कुछ निश्चित बंधे क्रम से चल रहा है और सभी कुछ इतना मोहक और हृदयग्राही है कि दर्शक घंटों खड़ा निर्निमेष दृष्टि से देखता रहे, फिर भी न थके।

गजलक्ष्मी के वाम पार्श्व में पार्वती की भव्य विशाल चतुर्भुजी मूर्ति है। यह अपने प्रत्येक हाथ में शिव, गणेश, मुण्ड एवं माला धारण किए हुए हैं। दाहिनी ओर ऊपर और नीचे वाले हाथों में क्रमशः शिव और माला है जब कि बाएं हाथों में उसी प्रकार गणेश और नरमुण्ड हैं। दीप स्तम्भ के निकट स्थापित गणपति गज-लक्ष्मी के दाहिने पार्श्व में हैं। इनकी विशेषता केवल इतनी सी ही है कि यह भी अपनी कौटुम्बिक परिपाटी के अनुसार भुजंग को यज्ञोपवीत के रूप में धारण किए हुए हैं। शिव की विशाल प्रतिमा मन्दिर के मध्य में स्थापित है।

श्रीचक्र

श्रीयन्त्र अथवा श्रीचक्र महालक्ष्मी का तान्त्रिक प्रतीक है । शिला में महा-लक्ष्मी के इस स्वरूप का अपना अनोखा स्थान है ।

प्रस्तुत यन्त्र चमत्कारी माना जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस यन्त्र को धोकर प्रसव-यन्त्रणा से पीड़ित स्त्री को पिलाने से प्रसव-पीड़ा कम हो जाती हैं और बच्चा बड़ी सुगमतापूर्वक बिना कष्ट के बाहर आ जाता हैं ।

एक जनश्रुति

उपर्युक्त शिव-मन्दिर के सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रचलित है । कहते हैं कि इसे नाथ सम्प्रदाय के एक बाबाजी ने, जब यह मन्दिर ऊपर आकाश में उड़ता हुआ जा रहा था, अपने यौगिक बल से नीचे उतार लिया था । बाबाजी ने बाद में समाधि ले ली थी जो अभी तक तालाब के निकट एक मकान में वर्तमान है । यह सत्य है कि वर्तमान नवल सागर के स्थान पर पहले एक सुन्दर और घना उद्यान था । उसमें जहां आज मन्दिर बना है, ठीक उसके नीचे एक मठ था जिसमें शिवजी स्थापित थे । आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व महाराव राजा रघुवीरसिंह जी के शासन-काल में जब यह तालाब बनाया गया तब मठ को खोद कर शिव जी को ऊपर ले लिया गया और वर्तमान मन्दिर में पथरा दिया गया । अतएव मन्दिर तो नवीन है किन्तु उसमें प्रस्था-पित प्रतिमाएं प्राचीन हैं । साथ में यह भी किंवदन्ती है कि उक्त मठ को उखाड़ने और शिव जी को इस मन्दिर में स्थापित करवाने के कारण नरेश को अपने एकमात्र युवराज राघवेन्द्र सिंह से हाथ धोना पड़ा । यह परिवर्तन शास्त्र के विरुद्ध किया गया था, कारण शिवजी को एक बार स्थापित करने के पश्चात् स्थानान्तरण करना निषिद्ध है ।

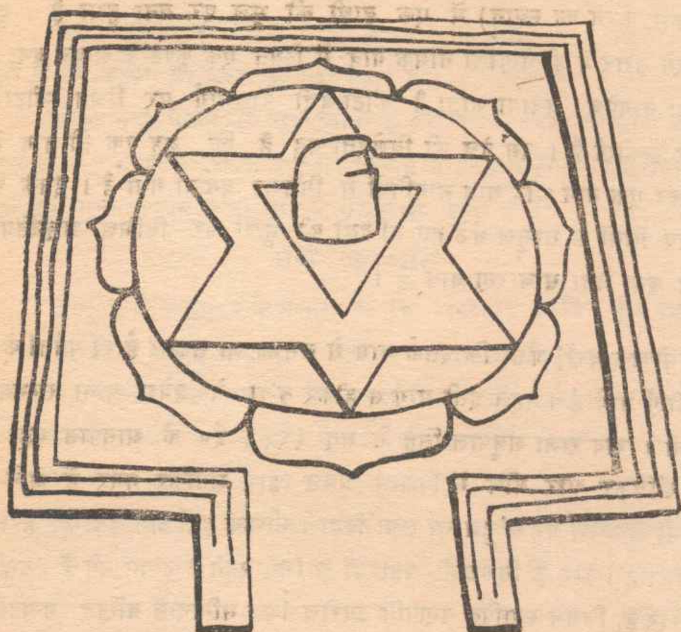
तीसरी प्रतिमा बूंदी अजमेर राजमार्ग पर स्थित मींडक दर्रा फाटक के निकट बने गणेश मन्दिर के सभा मण्डप की छत पर उत्कीर्ण है । यह प्रतिमा नाग-पेच की है जो देखने में बड़ी जटिल और बड़ी भव्य है । इसकी आकृति अष्टदली मण्डल के समान है । यह मण्डल केवल एक ही नाग की लपेट से बनां है, जिसके सिर और पूंछ ऐंठते और बल खाते हुए एक ही स्थान पर आ निकले हैं , मण्डल लगभग ६० सैं०मी० का वर्गाकार है जो लगभग ६८ × २७० सैं०मी० लम्बे शिला-खण्ड पर उत्कीर्ण है । सभा मण्डप की पूरी छत इस प्रकार के तीन शिलाखण्डों को मिलाकर बनाई गई है ।

इसके अतिरिक्त तीन और भी नागपेचों का पता चला है। इनमें से एक बूंदी से बाहर उत्तर में बाण गंगा के इसी ओर क्षार बाग (राजघराने के लोगों का दाह संस्कार करने का स्थान) में एक हाथी की भूल पर बना हुआ है। दूसरा इससे आगे उत्तर में ही गेंणोली नामक गांव में स्थित एक कुण्ड के अन्दर बना हुआ है। चौथा नागपेच बताया जाता है कोटा-बूंदी राजमार्ग पर स्थित कोटा-बूंदी बावड़ी में उत्कीर्ण है। इस पेच की विशेषता यह है कि यह एक ही नाग से न बना होकर एक नाग और सात नागनियों से मिलकर बनाया गया है। इनके अतिरिक्त शिव लिंगों के सम्मुख बैठे हुए नन्दियों की भूलों पर विभिन्न आकृतियो के नाग पेच बना लेना साधारण बात है।

मीण्डक दर्रा, जैसा कि इसके नाम से समझा जा सकता है दो पर्वतों के बीच एक संकीर्ण मार्ग है। पहले इसी मार्ग से होकर बूंदो में प्रवेश पाना सम्भव हो सकता था। राव राजा शत्रुपाल सिंह ने सन् १६१३ ई० के आसपास यहाँ नगर प्राचीर खींचकर और बीच में विशाल प्रवेश द्वार खड़ाकर नगर में आने जाने वाले लोगों के प्रवेश पर अंकुश सा लगा दिया। मीण्डक दर्रा क्षेत्र बड़ा ही हरा भरा और सुरम्य है। द्वार के निकट ही प्रहरियों के लिये रहने के स्थान बने हैं। इन्हीं से सटा मन्दिर है, जिसमें स्थापित गणपति उपरोक्त शिव मन्दिर में वर्णित गणपति के बिल्कुल समान है, माप में भी और वर्णन में भी।

यहां यह भी बता दिया जाए कि बूंदी के अन्दर और बाहर चारों ओर जितने भी प्रवेश द्वार बने हैं, उनके बाहर अथवा अन्दर की ओर प्रायः सभी जगह रक्षा के लिए गणपति की मूर्तियां प्रस्थापित हैं और वे सभी प्रायः एक ही माप की हैं। इनके वर्णन के सम्बन्ध में निश्चय पूर्व कहना सम्भव नही, क्योंकि इन्हें मैंने निकट से देखने की चेष्टा नहीं की है। बूंदी में गणपति की जितनी अधिक मान्यता है उसका अनुमान उन असंख्य छोटी-छोटी प्रतिमाओं से लगाया जा सकता है जो सभी पुराने मकानों में घर के अन्दर प्रत्येक द्वार के ऊपर बने एक छोटे से आले में प्रस्थापित मिलती है। घर के प्रवेश द्वार के ऊपर उसका रहना तो नितान्त आवश्यक समझा जाता था। गणपति को वास्तव में विघ्न विनाशक माना जाता है और इसी मान्यता को लेकर बूंदी में इनकी इतनी अधिक पूजा की जाती है।

मूर्तियों का प्रतीकात्मक अध्ययन



शिव केदारेश्वर के मन्दिर के सामने स्थापित पूर्व वर्णित शिवलिंग तांत्रिक सिद्धांतों पर बनाया गया है। मंदिर, प्रतिमाएं, स्तूप, स्तम्भ, शिवलिंग आदि उत्कीर्ण करने के भी वे ही सिद्धांत होते हैं, जो यंत्र बनाने के। अतएव यदि इन प्रतिमाओं में प्रयुक्त प्रतीकों को आरम्भ में ही समझ लिया जाए तो प्रतिमाओं की मूल भावना समझना सरल हो जाएगा।

यन्त्र का आरम्भ केन्द्र बिन्दु से किया जाता है। बिन्दु को विश्व व्यापिनी शक्ति अथवा चित्त का प्रतीक माना जाता है। बिन्दु में स्पन्दन होता है और इस स्पन्दन से नाद और विन्दु की उत्पत्ति होती है। तत्व दर्शन में इन्हें क्रमशः नाम और रूप माना गया है। इन्हें शक्ति-नाद और बिन्दु अथवा बीज-नाद भी कहा जाता है। इन्हें तीन विन्दुओं से दर्शाया जाता है जो ज्ञान, इच्छा और क्रिया शक्ति के प्रतीक हैं। वास्तव में ये एक ही शक्ति के तीन नाम हैं। इन तीनों विन्दुओं को रेखाओं द्वारा आपस में जोड़ने से त्रिकोण बनता है, जिसके अन्दर बिन्दु रहता है। यह त्रिकोण, तीन का प्रतीक है। ज्ञान, इच्छा और क्रिया, सत्व, रज और तम, ब्रह्मा, विष्णु और

महेश; ऋक् यजुस् और साम; ओम्, आदि। इनका संयुक्त रूप शूल और त्रिरूप त्रिशूल माना जाता है।

इस केन्द्र बिन्दु और उसको समाहित करने वाले त्रिकोण के बाहर दो संपुटित त्रिकोण हैं। इनमें उर्ध्वमुखी त्रिकोण कूटस्थ ब्रह्म अथवा स्थिति तत्व का और अधोमुखी त्रिकोण क्रियात्मक अथवा गतिशक्ति का प्रतीक है। इस स्थिति और गति से दोलायमान होकर बिन्दु फैलता है और वृत का रूप धारण कर लेता है। बिन्दु का यह दौलायमान रूप अथवा उल्लास की स्वाभाविक गति ही स्वयं विभु का नृत्य है, जो सृष्टि, स्थिति और जगत् का कारण है।

ये दो संपुटित त्रिकोण वृत्त अभिन्न में समाहित हैं और यही समस्त प्रकृति है। यह वृत्त विघटित होकर तत्व का रूप धारण कर ब्रह्माण्ड का विस्तार करता है। इसके तीन गुणों को दर्शाने के लिए कभी-कभी एक के अन्दर एक तीन वृत्त बनाये जाते हैं। यही वृत्त हिरण्य गर्भ अर्थात् ज्योतिर्मण्डल कहलाता हैं, जो विघटित होकर विराट् अर्थात् स्थूल जगत् का रूप धारण कर लेता है।

वृत्त अभिन्न के बाहर आठ कमलदल हैं। ये विघटित होकर इधर उधर छिटकी भिन्न प्रकृति के अष्ट रूप हैं। ये अष्टरूप हैं: पंच तत्त्व, मन, बुद्धि और अहंकार।

वृत्त और वक्र रेखा सदैव तनी हुई और गतिमान् रहती है। विस्तार उनका स्वभाव है। ये चतुष्कोण में स्थिर होते हैं और प्रकृति का रूप धारण कर जगत् को रूप देते हैं। चतुष्कोण स्थिरता का प्रतीक है। यह स्थिति का चिन्ह है और भूतत्व का प्रतीक माना जाता है—भूग्रह का नहीं, जो स्वयं यह भू-नक्षत्र है। यह चतुष्कोण जो स्थैर्य का नगर अथवा दुर्ग है, भूपुर कहलाता हैं। इसमें चार द्वार होते हैं जिनमें प्रवेश पाने के लिए साधक को विभु अथवा गुरु का आशीर्वाद प्राप्त होना चाहिए। इसी आशीर्वाद में मानव जीवन की सार्थकता निहित रहती है, अन्यथा वह पशु के समान विचरण करता रहता है।

इस प्रकार इस समस्त व्यवधान में बिन्दु के स्थान पर शिव लिंग, जो विश्व व्यापिनी शक्ति है, स्थित है। यह त्रिकोण के अन्दर स्थित है जो स्वयं विभु की प्रवञ्जना है। इस त्रिकोण का दो संपुटित त्रिकोणों के अन्दर स्थित होना बिन्दु के ताण्डव का परिचायक है। विभु जगत् के नियंता हैं और उसे स्थिरता प्रदान करते हैं।

त्रिकोणों को घेरने वाला वृत्त हिरण्यगर्भ है जो विघटित होने पर विराट् अर्थात् स्थूल जगत् का रूप ग्रहण कर लेता है। वृत्त के बाहर आठ दल उपरोक्त वर्णन के अनुसार प्रकृति के आठ रूप हैं।

इस समस्त यन्त्र को चतुष्कोणी बेदी में स्थिर कर दिया गया है। वेदी त्रिगुणात्मक है। इसकी तीन मेखलाएं सत्व, रज, और तम तीन गुणों की परिचायक हैं। वेदी में केवल एक द्वार है जो तम रूपी अभिषेक जल के निष्कासन के लिए बना है।

श्रीयंत्र—गज लक्ष्मी का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इसका प्रधान आकर्षण श्रीयंत्र है। यह यंत्र अथवा चक्र अपनी तांत्रिक शक्ति और आध्यात्मिक सम्पन्नता के लिए प्रसिद्ध है। श्रीचक्र ९ त्रिकोणों का मनोहारी संपुंजन है। यह सुख और सम्पदा की मानिनी देवी लक्ष्मी का भव्य और प्रभावकारी यंत्र है। इसमें ४ ऊर्द्ध्वमुखी और ५ अधोमुखी त्रिकोण होते हैं जो एक दूसरे को काटकर ४३ छोटे बड़े त्रिकोणों का सृजन करते हैं। इसके केन्द्र में बिन्दु होता है जो इस चक्र का बीज है। यंत्र में चार ऊर्द्ध्वमुखी त्रिकोण श्रीकण्ठ अथवा शिव-तत्व (शिव ऊर्द्ध्व शीर्ष त्रिकोण) हैं और पांच अधोमुखी त्रिकोण शिव युवती अथवा शक्ति-तत्व (शक्ति अध्यशीर्ष त्रिकोण) हैं। श्रीयंत्र को मानव शरीर का प्रतीक माना गया है। शरीर में नौ रंध्र यंत्र में नौ चक्रों के समान हैं। इन चक्रों पर पूजा करने का उद्देश्य अभेद्य भावना की प्राप्ति है। इसमें ज्ञाता को होता, ज्ञान को अर्घ्य और ज्ञेय को हवि माना गया है। यथा :

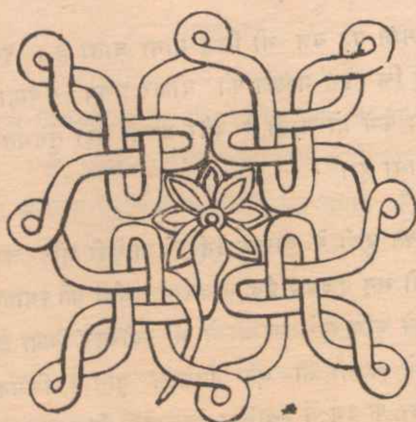
ज्ञाता स्याद्धोता, ज्ञानम् अर्घ्यं, ज्ञेयं हविः स्थितम् ।
श्री-चक्र-पूजनं तेषाम् एकीकरणम् ईरितम् ॥

बुडरोफ (सर जॉन) महाशय के शब्दों में यह चमत्कार पूर्ण यंत्र मानव शरीर और समस्त ब्रह्माण्ड और मनुष्य का प्रतीक है। क्योंकि जो ब्रह्माण्ड में है वही मनुष्य के अन्दर है, और यही शिवशक्ति स्वरूप अथवा आत्मा हैं। अतएव यह देवी के स्वयं अपने और विश्वात्मा स्वरूप का प्रतीक है।

इसमें यंत्र के कई परा रूप हैं किन्तु अभी तक इसके केवल तीन ही रूप प्रकाश में आ सके हैं। इनमें से सबसे पहला यंत्र विंध्य वासिनी क्षेत्र में भैरव कुण्ड के

तट पर खड़े अष्टभुज के भग्न मंदिर में पाया गया है। पहला यंत्र एक विशाल शिला खण्ड पर बड़ी सफाई और नाप तोल से उत्कीर्ण किया गया है। दूसरा अन्नपूर्णा के मंदिर में पीठिका पर रखे संगमरमर के शिला पट्ट पर उत्कीर्ण है। इस यंत्र के केन्द्र में चार भुजाधारी भगवती की सुन्दर प्रतिमा खड़ी है जिसके चारों हाथ, पाश, अंकुश, धनुष और बाण से सुशोभित हैं; तीसरे की मैंने स्वयं खोज की थी और उसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है।

पार्वती और गणेश के सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना नहीं है। पार्वती के जिस रूप का ऊपर वर्णन दिया गया हैं वह इलोरा की गुफाओं में स्थित पार्वती की प्रतिमा से मिलता है। इस प्रतिमा में वे अपने चारों हाथों में पूर्व वर्णित क्रम में शिव, गणेश, कमण्डलु और रुद्राक्ष धारण किये हुए हैं।



नागपेच—मींडक दर्रा के निकट गणपति मन्दिर के सभा मण्डप की छत पर उकेरित नागराज को हम देख चुके हैं। ये ऐंठते, उमेठते एक भव्य, जटिल मण्डल का सृजन करते हैं, जो साधरणतया चौक के नाम से जाना जाता है। यह मण्डल देखने से दो सम्पुटित चतुष्कोणों का संपुंजन लगता है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, चतुष्कोण स्थिति तत्व अथवा भुपुर का प्रतीक है। यहां पर एक ही नाग की लपेट से बने दो संपुटित चतुष्कोणों का गणेश मन्दिर में होने का क्या अर्थ है? यह निम्न संदर्भ में समझा जा सकता है।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं नाग काल अथवा समय का प्रतीक है। इस जगत् को काल सर्प की लपेट में उलझा हुआ माना जाता है। काल की गति और

दिक् की स्थिति एक दूसरे पर घात-प्रतिघात करते रहते हैं। इन दोनों के मध्य चल रहे इस घात प्रतिघात के फलस्वरूप सृष्टि, स्थिति और विनाश का चक्र निरन्तर गतिमान् रहता है। यह पृथ्वी दिक् की स्थिति शक्ति की सूचक है। इस प्रकार यह पृथ्वी सर्प-दिक् और काल ऐच्छिक विहार (क्रीड़ा) में निरन्तर संलग्न हैं और प्रमुख पात्रों के समान विभु की इच्छा की संप्राप्ति में व्यस्त हैं।

काल सर्प की इस टीका से मण्डल का अर्थ प्रायः स्पष्ट हो जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहां दिक् (स्थिति) और काल, पृथ्वी, (दो सम्पुटित चतुष्कोण जिसके प्रतीक हैं) और ऐहिक सर्प गणपति की सेवा में निरन्तर व्यस्त हैं। गणपति को यहां विभु अथवा आदि-शक्ति के रूप में स्थापित किया गया है।

श्रीयंत्र के समान यह यंत्र भी सिद्ध माना जाता है। इसके सम्बन्ध में भी लोगों का विश्वास है कि इस मण्डल को धोकर प्रसव यंत्रणा से पीड़ित स्त्री को पिलाने से प्रसव पीड़ा कम हो जाती है और बच्चा बड़ी सुगमतापूर्वक बिना किसी कष्ट के बाहर आ जाता है।

इनके अतिरिक्त बूंदी में चालक देवी, खेड़ा देवी और चामुण्डा देवी की ऐसी प्राचीन प्रतिमाएं हैं जो सन् १३४२ ई० में वर्तमान बूंदी की स्थापना से पहले की मानी जाती हैं। इस बात को कवि सूर्यमल्ल जी ने भी स्वीकार किया है। नैनवां में प्राचीन मूर्तियों की शृंखला में काली की एक विशाल मूर्ति है, जिसका विग्रह जयपुर की प्राचीन राजधानी आमेर के दुर्ग में स्थापित शिलादेवी के समान है। देवी के सोलह हाथ हैं और वे सिंह पर विराजमान है। पत्थर काला, पक्का है। दैवी का मन्दिर नगर से बाहर तालाव के किनारे पर स्थित है। उसी ओर से विराट् की प्राचीन नगरी की ओर जाने का मार्ग भी है।



चुनाव-चिह्न की राजनीति

डा० ब्रह्मा भारद्वाज

● दिल्ली विश्वविद्यालय के पत्राचार पाठ्यक्रम-विभाग में राजनीति के प्राध्यापक

———

'प्रतीक' चिह्न विचारों या भावों की रेखांकित या चित्रित अभिव्यक्ति है। इन्हें अंगुलियों, हाथ, मुख, आँख या शरीर के अन्य अंगों के द्वारा भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। वास्तव में चिह्न या प्रतीक का मानव से जीवन में निकट से सम्बद्ध हैं। आदिकाल से आज तक मनुष्य इनका सहारा लेता रहा है। अन्तर केवल इतना है कि अतीत की अविकसित अवस्था में वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए इन पर आज की अपेक्षा अधिक निर्भर था। आज उसने अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम ढूंढ लिये हैं, फिर भी जब वे उसकी अभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाते हैं, तब प्रतीक ही उसकी सहायता करते हैं। ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, नाट्य आदि को भी इन प्रतीकों ने प्रभावित किया हैं। विधायिका और अन्य संस्थाओं के निर्वाचन भी इनसे अछूते नहीं रहे।

चुनावों के प्रसंग में इनका कार्य सीमित है। वे मतदाता को यह बता देते हैं कि उनकी पसंद का उम्मीदवार कौन सा है। यह उद्देश्य दूसरी प्रकार उम्मीदवार का नाम लिख देने से भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु देश में साक्षरता के निम्न प्रतिशत को देखते हुए इसका उपयोग सीमित ही है। इसी कारण १६५२ में निर्वाचन आयोग का भी विचार था कि भारत में साक्षरता के निम्न प्रतिशत (लगभग १६.६ प्रतिशत) को देखते हुए बहुत भारी संख्या में मतदाताओं के लिए यह असम्भव होता कि वे अपना मत मतपत्र पर अंकित कर

सकते, विशेषतः यदि उस पर उम्मीदवारों के नाम ही छपे हों।[1] परिस्थितियाँ आज भी इतनी नहीं बदली कि इस पद्धति को बदला जा सकता। साक्षरता निरन्तर बढ़ती रही है, १९६१ में यह २४.०३ प्रतिशत थी तो १९७१ में २९.३५ प्रतिशत है। तथापि तथ्य यह है कि लगभग ७० प्रतिशत मतदाता अनपढ़ हैं। निरक्षरता-जन्य समस्या को सुलझाने के दो उपाय हैं। पहला, यह कि हम प्रत्येक उम्मीदवार को एक चुनाव चिह्न दे दें जिसे मतदाता सरलता से पहचान ले और उचित उम्मीद-वार को मत दे सके। दूसरा, यह कि निर्वाचन अधिकारियों को इस विषय में निर्देश दे दिया जाय कि वे मतदाता की सहायता कर दें। परन्तु मत की गोपनीयता को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन आयोग ने पहले उपाय को अपनाया है।

चुनाव-चिह्नों के मूल

चुनाव-चिह्नों के लिए कुछ आवश्यक शर्तें हैं। एक अच्छा चिह्न वही कहा जायगा जो सरलता से पहचाना जा सके और दूसरे चिह्नों से अलग किया जा सके। साथ ही, निर्वाचन आयोग यह भी चाहता है कि किसी ऐसी वस्तु को जिसकी धार्मिक या संवेगिक उत्तेजना हो, जैसे गाय, मंदिर, राष्ट्रध्वज या चर्खा—इन्हें अनुमोदित चिन्हों की सूची में स्थान नहीं मिलना चाहिये।[2] उम्मीदवार की दृष्टि से एक अच्छा चुनाव-चिह्न वह है जो जाना-पहचाना हो और जिसे सामान्य मत-दाता सरलता से याद रख सके, साथ ही जनता में उसका प्रभाव हो। उदाहरण के लिए भारत में लगभग ८० प्रतिशत जनता ग्रामों में रहती हैं और खेतीहर है। अतः जुआ धरे बैलों की जोड़ी का चिह्न उसके लिए बहुत घनिष्ठ था और उसे प्रभावित कर सकता था। इसी प्रकार झोंपड़ी, पेड़, हथौड़ा और हंसिया सा-मान्य नागरिक से अपना निकट सम्बन्ध बैठाते हैं।

१९५१ में चुनाव-आयोग ने यह निर्णय लिया कि मान्य चुनाव-चिह्नों की एक सूची घोषित कर दी जाय। सबसे पहले इस सूची में सुरक्षित और स्वतंत्र कुल मिला कर २६ चिह्न घोषित किए गए थे : जुआ धरे बैलों की जोड़ी, पेड़, खड़ा हुआ शेर, मनुष्य का हाथ, घोड़ा और सवार, झोंपड़ी, उदीयमान सूर्य, हाथी, बाल और हंसिया, फावड़ा और बेलचा, मशाल, सितारा, अनाज बरसाता हुआ किसान, दीप,

---

१-भारत के प्रथम सामान्य चुनावों पर रिपोर्ट, १९५१-५२, जिल्द १ (सामान्य) (चुनाव आयोग भारत, १९५५). पृष्ठ ८०

२-वही पृष्ठ ८१

धनुष-बाण, (बिहार के अतिरिक्त), रेल का इंजन, साइकिल, गाड़ी, नाव, फूल, सीढ़ी, तराजू, मुर्गा, ऊँट, और दो पत्तियाँ। प्रथम चुनावों के पश्चात् यह कहा गया था कि रेल के इंजन से ग्रामीण जनता परिचित नहीं थी, अतः आयोग ने दूसरे चुनावों के दौरान इसे सूची में से निकाल दिया।[1] शेष २५ चिह्न उसी प्रकार रख लिये, उनमें कोई नवीन चिह्न जोड़ा भी नहीं गया था। पंजाब में तीर-कमान (धनुष बाण) भी वापस ले लिया गया था। तीसरे चुनावों में इस सूची में कोई परिवर्तन नहीं हुआ पर चौथे चुनावों में इस सूची में काफी परिवर्तन अंशतः इस कारण हुए कि नये दल अस्तित्व में थे और अंशतः इसलिए कि कुछ पुराने चिह्न वापस ले लिये गये थे। अतः घोड़ा और सवार, मुर्गा, धनुष-बाण, कलश, अनाज बरसाता हुआ किसान, और मशाल सूची में से निकल गये, पर हथौड़ा, हंसिया और सितारा, घोड़ा, हल और फावड़ा, ये नये चिह्न उसमें जुड़ गये। यहाँ यह उल्लेख कर देना रुचिकर होगा कि हथौड़ा, हसिया और सितारा का चुनाव चिह्न साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) को दिया गया, घोड़ा केरल कांग्रेस को, और 'हल' जम्मू-कश्मीर नेशनल कान्फ्रेन्स को। किन्तु २४ चुनाव चिह्नों की यह सूची भी समय पर छोटी पड़ गयी और अनेक नये चिह्न इसमें जोड़े गये। आरम्भ में ६ स्वतन्त्र चिह्न थे, पर पीछे लगभग ६ चिह्न मध्यप्रदेश में और १० उत्तर प्रदेश में और जोड़े गये। पांचवें चुनावों में यह सूची बहुत बढ़ गई। कुल मिलाकर इसमें ४६ चिह्न थे।[2]

पाँचवें चुनावों की सूची की कुछ विशेषताएँ हैं। प्रथमतः, जिन चिह्नों को किसी कारणवश त्याग दिया गया था उनको भी सम्मिलित कर लिया गया। द्वितीयतः, कुछ चिह्नों पर इस आधार पर आपत्ति की जा सकती है कि वे धार्मिक, अथवा सांवेगिक भावनाओं से सम्बद्ध हैं जैसे गाय-बछड़ा, चर्खा, स्वस्तिक। इस आपत्ति का महत्व इसलिए और भी हो जाता है कि आयोग ने इनको पहले मान्यता नहीं दी थी। तृतीयतः, 'हल' तीन रूपों में मिलता है और चौथा रूप है 'किसान के साथ हल।' इसी प्रकार 'फावड़ा' और फावड़ा और बेलचा एक ही वस्तु से सम्बन्धित दो चिन्ह हैं। चतुर्थतः, लगभग १५ चिन्ह खेती और किसानों

१-भारत के द्वितीय सामान्य चुनाव, जिल्द १ (सामान्य) पृष्ठ ८२

२-देखिये परिशिष्ट दो

से सम्बन्धित हैं। पंचमतः 'हल चक्का' चुनाव-चिन्ह प्रजा समाजवादी दल के चिन्ह से मिलता जुलता है।

चुनाव चिह्नों का चयन

राजनीतिक दलों के द्वारा चुनाव-चिन्हों का चयन इतना सरल नहीं जितना दिखाई देता है। चिन्ह ऐसा होना चाहिए जिससे सामान्य जनता परिचित हो, जिसे सरलता से पहचाना और स्मरण रखा जा सके, साथ ही, जो जनमत को आकृष्ट कर सके, परन्तु निर्वाचन-आयोग के द्वारा धार्मिक उत्तेजना के कारण अस्वीकृत न हो जाए। इसके अनन्तर, चुनाव-चिन्ह ऐसा होना चाहिए जो दल के आदर्श और कार्यक्रम को प्रतिबिम्बित कर सके। ऐसा प्रतीत होता है कि नई कांग्रेस ने गाय-बछड़ा इसलिए चुना कि यह चिन्ह जुआ धरे बैलों की जोड़ी के पुराने चिन्ह के बहुत निकट है और अतीत के साथ निरन्तरता बनाये रखता है। इसके भावनात्मक महत्त्व को भी भुलाया नहीं जा सकता। पुरानी कांग्रेस के लिए 'चर्खा कातती महिला' में चर्खा आर्थिक न्याय और निर्भरता के लिए संघर्ष का प्रतीक है। साथ ही यह गांधी जी और उनके स्वदेशी से जुड़ा हुआ है। जनसंघ का उद्देश्य है राजनीति में भारतीय विचारों का उदय। अतः उसका आधार भारतीय दर्शन और इतिहास कहा जाता है। यह दल राजनीति में नया प्रकाश लाना चाहता है अतः परम्परागत मिट्टी का दीपक ही, जो छोटी से छोटी कुटी को प्रकाशित करता है' दल का चिन्ह चुना गया है। प्रजा समाजवादी दल ने 'झोंपड़ी' इसलिये चुना है कि दल गरीब जनता, लघु उद्योग-धंधों, विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था और ग्रामीण धंधों की प्राथमिकता को महत्त्व देता है और 'झोंपड़ी' दल के इन आदर्शों को अच्छी प्रकार अभिव्यक्त करती है। जनता के साथ तादात्म्य स्थापित करने की इच्छा संयुक्त समाजवादी दल में भी मिलती है। उनका चुनाव-चिन्ह 'पेड़' है। पेड़ की जड़ों की भांति दल भी सबल एवं गहन आधार की कामना करता है। कुछ लोगों का विचार है कि यह वृक्ष वह बोधि वृक्ष है जिसके नीचे गौतम बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। अतः वृक्ष ज्ञान का प्रतीक है। समाजवादी दल धार्मिक या आध्यात्मिक समुदाय नहीं, अतएव वृक्ष की यह व्याख्या कुछ उचित प्रतीत नहीं होती। अनाज की बालें और हंसिया पुनः सामान्य कृषक समुदाय की अभिव्यक्ति करता है। इसी

प्रकार साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) के विषय में हथौड़ा मजदूर वर्ग का और हंसिया कृषक वर्ग का द्योतक है। स्वतंत्र पार्टी का चिन्ह 'सितारा' है, इसे ध्रुव-तारा से सम्बन्धित किया जाता है जो स्थायित्व, मार्ग-दर्शन, धैर्य, धर्म के प्रति आस्था का प्रतीक है।

चुनाव-चिह्नों का आरक्षण

१६५१ में चुनाव-आयोग ने यह निर्णय किया कि मान्यता प्राप्त दलों के लिये कुछ चिन्ह सुरक्षित रखे जाएं और शेष स्वतन्त्र कर दिये जायें, जिनका प्रयोग विभिन्न दल और स्वतन्त्र उम्मीदवार कर सकें। आयोग के सामने यह समस्या थी कि दलों को मान्यता देने और उन्हें स्वीकृत करने का न्यायोचित आधार क्या हो? पर्याप्त आँकड़ों के अभाव में यह निश्चित किया गया कि जो भी प्रमुख दल हैं और जो विभिन्न राज्यों में फैले हुए हैं, उन्हें राष्ट्रिय दल और शेष को प्रादेशिक दल मान लिया जाय। अतः लगभग २६ में से १४ को राष्ट्रिय दल मान लिया गया। इनमें से कुछ दलों ने अपनी अपनी पसन्द इस प्रकार व्यक्त की :

१ भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस
   (१) बैलों के साथ हल
   (२) कांग्रेस ध्वज चर्खा सहित

२ अखिल भारतीय फार्वर्ड ब्लाक (रूईकर गुट)
   १ आदमी का हाथ
   २ लालटेन
   ३ झोंपड़ी

३ अखिल भारतीय फार्वर्ड ब्लाक (मार्क्सवादी गुट)
   १ उछलता हुआ शेर
   २ खड़ा हुआ शेर
   ३ भारत के मान चित्र पर खड़ा हुआ शेर

४ अखिल भारतीय हिन्दू महासभा
   १ स्वस्तिक और तलवार

२ घोड़ा और सवार

३ पेड़

५ किसान मजदूर प्रजापार्टी

१ झोंपड़ी

२ तराजू

३ पेड़

६ अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्

१ गाय-बछड़ा और गोपी

२ उदीयमान सूर्य

३ स्वस्तिक

७ समाजवादी दल

१ हल

२ पेड़

३ मनुष्य का हाथ

४ छतरी

८ अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ

१ हाथी

९ भारतीय साम्यवादी दल

१ हथौड़ा और हंसिया

२ अनाज की बाल हंसिया और हथौड़ा

उपर्युक्त एवं अन्य कुछ दलों को अन्तिम रूप से चुनाव-चिन्ह इस प्रकार प्राप्त हुए —

१ अखिल भारतीय फार्वर्ड ब्लाक (मार्क्सवादी गुट)—खड़ा हुआ शेर

२ अखिल भारतीय फार्वर्ड ब्लाक (रूईकर गुट)—आदमी का हाथ

३ अखिल भारतीय हिंदू महासभा—घोड़ा और सवार

४ किसान मजदूर प्रजापार्टी—झोंपड़ी

५ अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्—उदीयमान सूर्य

६ अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ—हाथी

७ अखिल भारतीय कांग्रेस—जुआ धरे बैलों की जोड़ी

८ समाजवादी दल—पेड़

९ भारतीय साम्यवादी दल—अनाज की बालें और हंसिया (उन क्षेत्रों में जहां यह दल अवैध घोषित न हो)

१० क्रान्तिकारी समाजवादी दल—फावड़ा और बेलचा

(केवल असम, बिहार, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, ट्रावनकोर-कोचीन और दिल्ली में)

११ क्रान्तिकारी साम्यवादी दल—मशाल

(केवल बम्बई, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में)

१२ भारतीय बौलशेविक दल—सितारा

१३ कृषिकार लोक दल-अनाज बरसाता हुआ किसान

१४ अखिल भारतीय जनसंघ—दीप

उपर्युक्त अखिल भारतीय या राष्ट्रिय दलों के अतिरिक्त चुनाव-आयोग ने विभिन्न राज्यों में लगभग ५९ दलों को क्षेत्रीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की।

उपर्युक्त विवरण पर ध्यान से विचार करने पर यह तथ्य प्रकट होता है अखिल भारतीय फार्वर्ड ब्लाक (मार्क्सवादी गुट), अखिल भारतीय हिन्दू महासभा, अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्, समाजवादी दल, और साम्यवादी दलों को अपनी पहली पसंद के चुनाव-चिन्ह नहीं मिले। हाँ आयोग ने दलों के चिन्हों के डिजाइन (अल्पनाओं) को उसी प्रकार स्वीकार कर लिया जैसा दलों ने उन्हें उपस्थित किया था।

दलों को मान्यता

१९५२ के चुनावों पश्चात् चुनाव-आयोग ने दलों की मान्यता के प्रश्न पर पुनः विचार किया। अब उसके पास चुनाव-परिणाम के आँकड़े थे जिसके आधार पर दलों की सफलता को आंका जा सका। इस विषय में आयोग ने यह सिद्धान्त निर्धारित किया कि जिन दलों के संसदीय चुनावों में कुल मतों के तीन प्रतिशत वैध मत प्राप्त होंगे उन्हें राष्ट्रिय दल की मान्यता प्राप्त होगी। इसी प्रकार जिन दलों को विधान सभा के चुनावों में कुल मतों के तीन प्रतिशत वैध मत प्राप्त होंगे उन्हें

क्षेत्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त होगी। इस आधार पर केवल पाँच दलों को राष्ट्रिय दल की मान्यता प्राप्त रह सकी वे हैं : भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस, किसान मजदूर प्रजा पार्टी, समाजवादी दल, भारतीय समाजवादी दल, जनसंघ। इसी प्रकार केवल १५ दलों को क्षेत्रीयदल की मान्यता प्राप्त हो सकी। कालान्तर में इस सिद्धान्त में यह दोष उत्पन्न हो गया कि कुछ दल तो केवल इस उद्देश्य से उम्मीदवार खड़ा कर देते थे कि वे ३ प्रतिशत मत प्राप्त कर सकें। इस बुराई को दूर करने के लिए आयोग ने यह निर्णय किया के ३ प्रतिशत गिनते समय केवल उन्हीं उम्मीदवारों के मतों को गिना जाय जो अपनी जमानत को बचा सकें। अब ३ प्रतिशत की शर्त को बढ़ाकर ४ प्रतिशत कर दिया गया।

दलों को मान्यता के प्रश्न को अब विधि (Election Symbol Reservation and Allotment order,1968) के द्वारा नियंत्रित कर दिया गया है। ४ प्रतिशत शर्त को स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु जिन दलों को चार या अधिक राज्यों में मान्यता प्राप्त होगी वे राष्ट्रिय दल समझे जायेंगे, शेष क्षेत्रीय। राष्ट्रिय दलों के लिए चिन्ह सारे भारत में उनके लिए सुरक्षित रहेंगे, पर क्षेत्रीय दलों के चिह्न उन्हीं प्रदेशों में सुरक्षित रहेंगे जहाँ वह दल मान्य है। यदि कोई दल यह चाहे कि अन्य नये प्रदेश में उसके लिये चुनाव चिन्ह सुरक्षित कर दिया जाय जहां उसे मान्यता प्राप्त नहीं है, तो चुनाव चिन्ह सुरक्षित कर दिया जाये, जहां उसे मान्यता प्राप्त नहीं है, तो चुनाव-आयोग उस दल के लिए उस नये राज्य में उस विशेष चिन्ह की प्राथमिकता दे सकता है। मान्यता-प्राप्त दल केवल सुरक्षित चुनाव चिन्हों का ही प्रयोग कर सकते हैं, अन्य का नहीं। स्वतंत्र उम्मीदवारों को भी पिछले चुनाव-चिन्हों के चयन में प्राथमिकता दी जाती है।

चुनाव–चिह्नों के लिए संघर्ष—

चुनाव-आयोग सामान्यत: चुनाव चिन्हों में परिवर्तन नहीं करता। जब तक किसी दल को मान्यता प्राप्त रहती है, वह सभी चुनावों में अपने चुनाव-चिन्ह का प्रयोग करता रहता है। नये दल को मान्यता और चिन्ह के आरक्षण के विषय में यह नियम प्राय: निश्चित सा है कि वह दल आगामी चुनावों में स्वतंत्र दल के रूप में स्वतंत्र 'चुनाव-चिन्ह' के साथ उम्मीदवार खड़े करे, और मान्यता-प्राप्ति की शर्तों को पूरा करे। यदि वह सफल हो जाता है तो उसे भविष्य के लिए मान्यता और

चुनाव-चिन्ह मिल जाते हैं। लेकिन जब एक मान्यता प्राप्त दल दो गुटों में बँट जाता है तब इस विषय में कुछ ऐसी समस्याएँ सामने आती हैं—यथा: किस आधार पर उन गुटों को मान्यता दी जाय? किस गुट को पुराना और किस गुट को नया चुनाव-चिन्ह दिया जाय? अभी तक इस प्रकार के लगभग आधे दर्जन विवाद सामने आये हैं।

सबसे पहला विवाद समाजवादी दल से सम्बन्धित है। १९५२ के चुनावों के पश्चात् इस दल का और किसान मजदूर प्रजापार्टी का विलय हो गया और नया नाम प्रजा समाजवादी दल रख लिया गया। इस नये दल ने अपना चुनाव-चिन्ह 'झोंपड़ी' छाँटा और इसे आयोग से मान्यता भी प्राप्त हो गई। १९५५ में इस नए दल से कुछ सदस्य अलग हो गये और उन्होंने पुनः समाजवादी दल का संघटन किया। इस नये दल में संसद् और विधान सभाओं के अनेक सदस्य भी थे जिन्होंने संयुक्त रूप से ३ प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त किये थे। इसी आधार पर दल ने मान्यता और पुराने चुनाव-चिन्ह 'पेड़' की प्रार्थना की। पर आयोग ने इसे अस्वीकार करते हुए यह परामर्श दिया कि दल, आगामी चुनावों में, स्वतन्त्र चिन्ह के साथ शर्तों को पूरा करे और फिर अपना पक्ष प्रस्तुत करे। उच्च न्यायालय ने भी आयोग के विरुद्ध दल की प्रार्थना अस्वीकार कर दी।[१]

१९६४ में भारतीय साम्यवादी दल में फूट पड़ी, पर प्रतिद्वन्द्वी गुट इस बात पर सहमत हो गये कि असन्तुष्ट गुट नया भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) नाम रख ले। आयोग ने भी इस दल को आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और केरल में मान्यता दे दी और नया चुनाव-चिन्ह 'हथौड़ा हंसिया और सितारा' सुरक्षित कर दिया। जुलाई १९६४ में ही समाजवादी दल पुनः प्रकाश में आया। इस बार समाजवादी दल और प्रजासमाजवादी दल का विलय हुआ संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में और इसको मान्यता के साथ, 'झोंपड़ी' का चुनाव चिन्ह भी मिला। किन्तु शीघ्र ही इस नये दल से कुछ सदस्य अलग हो गये और उन्होंने पुराने प्रजा समाजवादी दल को पुनरुज्जीवित किया। नये प्रजा समाजवादी दल की प्रार्थना पर आयोग ने मान्यता और पुराना चुनाव-चिन्ह 'झोंपड़ी' प्रदान कर दी। संयुक्त समाजवादी दल ने इसका

१—रामचन्द्र शुक्ल प्र० चुनाव आयोग भारत, १३ ई० एल० आर० १०५, प्रभुचरन प्र० शिवदत्त १४ ई० एल० आर० १०८।

विरोध इस आधार पर किया कि उसे नया दल मानकर मान्यता और चुनाव-चिन्ह दिये जायें। किन्तु आयोग का तर्क था कि इस नये दल में लगभग वे सभी सदस्य हैं जो विलय से पहले भी प्रजा-समाजवादी दल में थे; अतः व्यावहारिक रूप में यह दल वही पुराना प्रजा-समाजवादी है और पुराने चिन्ह पर इसका अधिकार है। इसके विपरीत संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने उच्च न्यायालय में अपील की, पर सफलता नहीं मिली।[१] प्रजा-समाजवादी दल और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का विलय पुनः सोशलिस्ट पार्टी में हो गया,[२] पर अभी तक चुनाव-चिन्ह सम्बन्धी विवाद प्रकाश में नहीं आया है।

रिपब्लिकन दल के संगठन में भी फूट पड़ी है। परिणामतः चुनाव-आयोग ने पाँचवें चुनावों में दल के चुनाव-चिन्ह 'हाथी' को महाराष्ट्र में वापस ले लिया। अकाली दल के सन्त गुट और मास्टर गुट की रस्साकशी भी इसी प्रसंग में रुचिकर है। दोनों ही अपने को अकाली दल की संज्ञा देते और दल के चुनाव-चिन्ह 'आदमी का हाथ' पर स्वामित्व चाहते थे। छान-बीन के पश्चात् आयोग इस निर्णय पर आया कि मास्टर गुट को दल के सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं था, क्योंकि १५ अकाली दल के विधान सभायी सदस्यों में से केवल ३ का ही मास्टर गुट को समर्थन प्राप्त था। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के चुनावों में भी मास्टर गुट हार गया और सन्त गुट विजयी रहा। इस सब पर्यालोचन के पश्चात् आयोग ने दोनों गुटों को पृथक्-पृथक् मान्यता और चुनाव-चिन्ह देने का निर्णय किया। अतः मास्टर गुट को पुराना चिन्ह 'आदमी का हाथ' मिला और सन्त-गुट को नया चिन्ह 'तराजू'।[३] ऐसा प्रतीत होता है कि इस निर्णय में चुनाव-आयोग 'बहुमत-नियम' से प्रभावित नहीं हुआ, यद्यपि कांग्रेस-विवाद में इस पर अत्यधिक बल दिया गया था।

अखिल भारतीय कांग्रेस की फूट पिछले दिनों पर्याप्त चर्चा का विषय रही। १९५२ में इस दल को 'जुआ धरे बैलों की जोड़ी' का चुनाव-चिन्ह दिया गया था। १९६९ में इस दल में फूट पड़ी। एक गुट की अध्यक्षता की श्री निजलिंगप्पा ने और दूसरे की श्री सुब्रह्मण्यम् ने। दोनों ही अपने को वास्तविक भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस

१—संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी प्र० चुनाव आयोग, भारत ए० आई० आर० १९६७ सर्वोच्च न्यायालय ८९८।

२—९ अगस्त १९७१ से व्यवहार में।

३—ऐसा ही एक विवाद गोआ की युनाइटेड गोआन्स पार्टी का भी है।

बताते थे। इस विषय में आयोग ने दोनों पक्षों के विभिन्न तर्कों पर विभिन्न रूपों से विचार किया। पर अन्त में विधान और नियम या दलीय उद्देश्यों पर आधारित तर्कों को अस्वीकार कर आयोग ने अपना निर्णय बहुमत के सिद्धान्त पर आधारित किया। क्योंकि ए० आ०ई० सी० सी० के सदस्यों और विधान सभाओं के सदस्यों का बहुमत श्री सुब्रह्मण्यम् के पक्ष में था, अतः इसी गुट को आयोग ने वास्तविक कांग्रेस म ः नकर 'जुआ धरे बैलों की जोड़ी' का चुनाव-चिन्ह प्रदान किया। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि आयोग ने दल के प्राथमिक सदस्यों के बहुमत की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। हाँ, संसद् और विधान सभाओं के सदस्यों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए आयोग ने निजलिंगप्पा गुट को पृथक् दल मानना और नया चुनाव-चिन्ह देना अवश्य स्वीकार कर लिया,१ यदि यह नये नाम से इस प्रकार की प्रार्थना करे। परन्तु आसन्न पांचवें चुनावों के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने आयोग के इस निर्णय को तब तक के लिए रोक दिया जब तक न्यायालय उस पर अन्तिम निर्णय न दे दे। साथ ही आयोग को यह आदेश दिया गया कि वह दोनों गुटों को पृथक्-पृथक् नये चुनाव चिन्ह दे दे। फलतः नई कांग्रेस को 'गाय-बछड़ा' और पुरानी कांग्रेस को 'चर्खा कातती महिला' का चुनाव चिन्ह मिला।

चुनाव-चिह्न न्यायालय में

कांग्रेस विवाद में सर्वोच्च न्यायालय अपना निर्णय दे चुका है।२ इसमें उसने चुनाव आयोग के निर्णय को उचित ठहराया है। उसके अनुसार प्रजातंत्र में बहुमत का मूल्य होता है। चुनाव-चिन्हों से सम्बन्धित अन्य विवाद भी आये हैं। न्यायालय के सामने यह प्रश्न होता है कि क्या किसी विशेष चिन्ह में धार्मिक उत्तेजना है जो मतदाता को प्रभावित करती है? रामनारायणप्रसाद यादव प्रतिपक्ष शुबनाथ देवगन३ में पटना उच्च न्यायालय ने झारखण्ड दल के 'मुर्गा' चिन्ह पर विचार किया। मुण्डे, औरन आदि अनेक आदिवासियों के धार्मिक कार्यों में 'मुर्गा' का प्रयोग होता है। वे ग्राम, जंगल, सम्पन्नता, विनाश, बीमारी आदि के अधिष्ठाता देवताओं को प्रसन्न

१—यह उल्लेखनीय है कि १९५५ में चुनाव-आयोग ने इसी आधार पर सोशलिस्ट पार्टी को मान्यता देना अस्वीकार कर दिया था।

२—हिन्दुस्तान, १२-११-७१।

३—२१ ई० एल० आर० १०८।

करने के लिये मुर्गे की बलि धार्मिक रीति से देते हैं। अतः यह कहा गया है कि मुर्गे के साथ विशेष धार्मिक भावना सम्बद्ध हैं। यद्यपि धार्मिक भावना उत्तेजित करने के आधार पर न्यायालय ने चुनाव रद्द कर दिया, तथापि न्यायालय का विचार था कि 'मुर्गे' में कोई धार्मिक उत्तेजना नहीं है। शुबनाथ देवगन प्र० रामनारायण प्रसाद यादव१ में सर्वोच्च न्यायालय ने पटना उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय को स्वीकार किया।

'तारा' भी कोई धार्मिक चिन्ह नहीं, भले ही उसे ध्रुवतारा समझा जाय।२ इसी प्रकार ध्वजा पर यदि 'ओ३म्' चिन्ह प्रदर्शित किया जाय तो वह धार्मिक चिन्ह नहीं माना जायगा।३ मुर्गे के समान गाय भी धार्मिक वस्तु नहीं है, यदि इसका प्रयोग केवल चुनाव-चिन्ह के रूप में ही किया जाय४।

चुनाव-चिह्न और अन्धविश्वास

चुनाव चिन्हों में कभी-कभी भावात्मक उत्तेजना होती है, यद्यपि प्रयास यह किया जाता है कि न हो। चुनाव-चिन्हों से संबंधित कुछ घटनाएं रोचक हैं। एक व्यक्ति के जीवन में सीढ़ी का बहुत महत्त्व था। युवाकाल से ही यह उसके व्यवसाय में संगिनी रही थी। अतः वह केवल 'सीढ़ी' चुनाव चिन्ह वाले उम्मीदवार को ही मत देना चाहता था। उसने अन्य किसी उम्मीदवार को मत देने से मना कर दिया। एक अन्य घटना में, एक उम्मीदवार का चुनाव-चिन्ह 'खड़ा हुआ शेर' था। उसके सहयोगी एक ग्राम में मत माँगने गये। दुर्भाग्यवश, उसी रात एक चीता उस गाँव में आ गया और कुछ बकरियों को मार गया और कुछ को ले गया। दूसरे दिन प्रातः गाँव वालों ने उन व्यक्तियों को बता दिया कि 'शेर' का चुनाव-चिन्ह अशुभसूचक है,

---

१—२२ ई० एल० आर०।

२—रमण भाई आशा भाई पटेल प्र० दामी अजितकुमार फुलसिंह जी ए० आई० आर० १९६५ ए० सी० ६६९।

३—जगदेवसिंह सिद्धान्ती प्र० प्रतापसिंह दौलता, ए० आई० आर० १९६५ एस० सी० १८३।

४—नर्मदाप्रसाद प्र० छगनलाल ए० आई० आर० १९६९ एस० सी० ३९५, मनुभाई नन्दलाल अमरसे प्र० पोपटलाल मनिलाल जोशी ए० आई० आर० १९६९, एस० सी० ७३४।

जिसके कारण रात में उक्त दुर्घटना घटी ; अतः वे उस उम्मीदवार को मत नहीं देंगे। तीसरी घटना में, कुछ नाविक निर्वाचन स्थल पर 'नाव' के चुनाव-चिन्ह को ढूँढ रहे थे पर जब उन्हें यह चिन्ह नहीं मिला तो वे मत दिये बिना ही वहाँ से बाहर आ गये। राजस्थान में एक अंधी वृद्धा बैल के चुनाव-चिन्ह को ही मत डालना चाहती थी क्योंकि उसके पति ने ऊँट को मत दिया था। बैल और ऊँट ये दो ही घरेलू पशु थे। इन घटनाओं से यह आभास मिलता है कि कुछ मतदाताओं के लिए चुनाव-चिन्ह ही महत्त्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं।

चुनाव-चिह्नों का प्रभाव

चुनावों में चुनाव-चिन्हों का कुछ महत्त्व अवश्य रहता है। यह कहना कठिन है कि ये चिन्ह निष्क्रिय रहते हैं और इनका कार्य उम्मीदवार की पहचान करा देना मात्र है। चुनाव-अभियानों में इनके नाम पर मत मांगे जाते हैं या इनके विपक्ष में नारे लगाये जाते हैं। कभी-कभी एक दल के चुनाव-चिन्ह का प्रयोग दूसरे दल के उम्मीदवार पहले दल की अनुमति से कर लेते हैं। चुनाव-चिन्ह के साथ-साथ दल के आदर्श, संघटन और उम्मीदवार का व्यक्तित्व भी चुनाव परिणामों को प्रभावित करते हैं। पिछले चुनावों पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दलों की लोक-प्रियता घटती-बढ़ती रही है, यद्यपि चुनाव-चिन्हों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरी ओर, नये चुनाव-चिन्ह के कारण दल के मत प्रतिशत में कमी नहीं आई है। १९७१ के चुनावों में नई और पुरानी कांग्रेस का संयुक्त प्रतिशत ५३·५४ था, पर १९६७ में केवल ४०·८२ प्रतिशत। १९७१ का संयुक्त प्रतिशत १९५७ से अधिकतम प्रतिशत ४७·७८ से भी अधिक है। १९७१ के चुनावों में साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) का प्रतिशत कुछ बढ़ा है। भारतीय साम्यवादी दल स्थिर रहा है, पर अन्य दलों का गिरा है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्र दल को सबसे अधिक हानि हुई ; क्योंकि इसे १९६७ में ८.५४ प्रतिशत मत मिले थे, पर १९७१ में केवल ३·१२ प्रतिशत। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, प्रजा समाजवादी दल और स्वतंत्र पार्टी ४ प्रतिशत मत भी सुरक्षित नहीं रख सके।

निष्कर्ष

चुनाव-चिन्हों से संबंधित विधि और उसके पालन के सर्वेक्षण से कुछ तथ्य प्रकट होते हैं। चुनाव-चिन्ह ऐसी निष्प्रभाव वस्तु नहीं है जिसका कार्य केवल

उम्मीदवार की पहचान कराना हो। दल और उम्मीदवार के लिये इसका महत्त्व इससे अधिक है। चुनाव-चिन्ह चुनाव-अभियान में भी सहायक होता है। परन्तु चुनाव-चिन्हों के आरक्षण के सम्बन्ध में चुनाव-आयोग की नीति समरूप नहीं रही है। कुछ चुनाव-चिन्ह जो पहले अस्वीकार कर दिये जाते हैं, पीछे वे ही अनुमोदित सूची में स्थान पा जाते हैं। इसी प्रकार यह भी अनुचित प्रतीत होता है कि आयोग एक समय किसी विशेष चुनाव-चिन्ह को एक दल के लिये अस्वीकार कर दे, पर पुनः उसी या उस जैसे अन्य चिन्ह को दूसरे दल को प्रदान कर दे। इस संबंध में नई कांग्रेस, भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) जम्मू-कश्मीर नैशनल कॉन्फ्रेंस के चुनाव-चिन्ह विशेष उल्लेखनीय हैं। दलों को मान्यता देने के विषय में भी आयोग को विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं, और इनका प्रयोग भी अनेक अवसरों पर किया गया है। पर ऐसा प्रतीत है कि इसमें आयोग किसी एक सामान्य नीति की अपेक्षा दलों के प्रभाव और अवसर की महत्ता से अधिक प्रभावित हुआ है। संसदीय सदस्यता या बहुमत के सिद्धांत का पालन समान रूप से नहीं हुआ। प्रजातंत्रीय देश में प्रजातांत्रिक कार्यों में शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं होना चाहिए कि उससे पक्षपात अथवा अनियमितता का आभास मिले। इसके बजाय, यह इस प्रकार का होना चाहिए कि इससे प्रजातंत्र और प्रजातंत्रीय पद्धति में जनता का विश्वास दृढ़ हो।



परिशिष्ट १

पिछले चुनावों में राष्ट्रिय दलों को प्राप्त वैध मत और उनका प्रतिशत

राष्ट्रिय दल	प्राप्त वैध मत और उसका प्रतिशत				
	१९५२	१९५७	१९६२	१९६७	१९७१
कांग्रेस	४७६६५८७५	५७५७९५५९३	५१५०९०८४	५९५३१४४२५	
	४४.९९	४७.७८	४४.७३	४०.८२	
नई कांग्रेस					६२७८९३४८
					४३.०६
पुरानी कांग्रेस					१५२८५२७७
					१०.४८
जनसंघ	३२४६२८८	७१४९८२४	७४१५१७०	१३५४५१२०	१०७६९८१०
	३.०६	५.९३	६.४४	९.२९	७.३९
भारतीय साम्यवादी दल	३४८४४०१	१०७५४०७५	११४५००३७	७१५१०४९	६९०३९६९
	३.२९	८.९२	९.९४	४.९०	४.७३
भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)				६५०७३२५	७४१०६७३
				४.४६	५.०८
संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी				७१२९७८३	३५५४९१५
				४.८९	२.४४
प्रजा समाजवादी दल		१२५४२६६६	७८४८३४५	४४८९२८९	१४९९३२५
		१०.४१	६.८१	३.०८	१.०३
स्वतंत्र पार्टी			९०८५२५२	१२४५८५४७	४५४९८५०
			७.८९	८.५४	३.१२
योग	१०५९४४४९५	१२०५१३९१५	११५१६८८९०	१४५८४८९२६	१४५८३२३५

परिशिष्ट २

का० आ० ४७६ (१६७१) तिथि २५ जनवरी १६७१

का० आ० ४७६—निर्वाचन प्रतीक (आरक्षण और आबंटन) आदेश, १६६८ के अनुच्छेद १७ के अनुसरण में तथा अपनी अधिसूचना सं० ५६।६६—।। (का० आ० ८६), तारीख ४ जनवरी, १६६६ को अधिक्रांत करते हुए, भारत निर्वाचन आयोग एतद्द्वारा—

(क) सारणी १ में राष्ट्रिय दलों तथा उनके लिए क्रमश: आरक्षित प्रतीक,

(ख) सारणी २ में राज्यीय दल, वह राज्य अथवा वे राज्य जिनमें वे राज्यीय दल हैं, तथा ऐसे राज्य अथवा राज्यों में उनके लिये क्रमश: आरक्षित प्रतीक, तथा

(ग) सारणी ३ में हर एक राज्य के लिये मुक्त प्रतीक

विनिर्दिष्ट करता है—

सारणी १

राष्ट्रिय दल	आरक्षित प्रतीक
१—इंडियन नेशनल कांग्रेस	जुए युक्त बैलों की जोड़ी (उच्चतम न्यायालय के स्थगन आदेश ता० २० जनवरी १६७१ के कारण, उस न्यायालय में निर्वाचन-प्रतीक के मामले में लम्बित अपील के निपटाये जाने तक आबंटित न किया जाए)
(क) इंडियन नेशनल कांग्रेस (निजलिंगप्पा के नेतृत्व वाली)	चर्खा कातती हुई महिला
(ख) इंडियन नेशनल कांग्रेस (जगजीवनराम के नेतृत्व वाली)	गाय और बछड़ा
(२) स्वतन्त्र पार्टी	सितारा
(३) भारतीय जनसंघ	दीप

१-भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग II, खण्ड ३, उपखंड (ii) तिथि २७ जनवरी १६७१

राष्ट्रिय दल	आरक्षित प्रतीक
(४) भारत की कम्युनिस्ट पार्टी	बाल और हंसिया
५—संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी	पेड़
६—भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	हथौड़ा, हंसिया और सितारा
७—प्रजा सोशलिस्ट पार्टी	झोंपड़ी

सारणी २

राज्य का नाम	राज्यीय दल का नाम	आरक्षित प्रतीक
आसाम	ऑल पार्टी हिल लीडर्स कॉन्फ्रेंस	फूल
बिहार	जनता पार्टी	घोड़ा
हरयाणा	विशाल हरयाणा	उदीयमान सूर्य
जम्मू और कश्मीर	जम्मू और कश्मीर नैशनल कांग्रेस	हल
केरल	१—मुस्लिम लीग	सीढ़ी
	२—केरल कांग्रेस	घोड़ा
	३—रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी	फावड़ा और बेलचा
महाराष्ट्र	१—भारत की रिपब्लिकन पार्टी	हाथी
	२—पीजेंट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी	गाड़ी
मैसूर	जनता पक्ष	तराजू
नागालैण्ड	१—नागालैण्ड नैशनलिस्ट आरगेनाइजेशन	मिथुन
	२—यूनाइटेड फ्रंट ऑव नागालैण्ड	मुर्गा
उड़ीसा	जनकांग्रेस	तराजू
पंजाब	शिरोमणि अकाली दल	तराजू
तामिल नाडु	द्रविड़ मुन्नेत्र खड़गम	उदीयमान सूर्य
उत्तर प्रदेश	भारतीय क्रांति दल	हलधर

राज्य का नाम	राज्यीय दल का नाम	आरक्षित प्रतीक
पश्चिमी बंगाल	१—बंगला कांग्रेस	हल
	२—फॉवर्ड ब्लाक	शेर
	३—रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी	फावड़ा और बेलचा
गोवा, दमण और दीव	१—महाराष्ट्रवादी गोमान्तक	शेर
	२—यूनाइटेड गोअन्स (सक्विरा ग्रुप)	हाथ
पांडिचेरी	१ पीपुल्स फ्रन्ट	हाथी
	२ द्रविड़ मुन्नेत्रखड़गम	उदीयमान सूर्य
त्रिपुरा	त्रिपुरा कांग्रेस	हल
मेघालय	आल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेस	फूल

सारणी ३

राज्य का नाम	मुक्त प्रतीक
१ आन्ध्रप्रदेश	१ साइकिल, २ घोड़ा, ३ तराजू, ४ फावड़ा, ५ दो पत्तियाँ, ६ हाथी, ७ नाव, ८ ऊँट ९ कलश, १० रेल का इंजन, ११ हलधर तथा १२ वृत्त के भीतर स्वस्तिक।
२ आसाम	१ साइकिल, २ नाव, ३ शेर, ४ तराजू ५ फावड़ा, ६ दो पत्तियां ७ गोरैया, ८ कलश ९ रेल का इंजन, तथा १० ऊँट ।
३ बिहार	१ शेर, २ उदीयमान सूर्य, ३ तराजू, ४ दो पत्तियां, ५ हलधर, ६ हाथी, ७ सीढ़ी, ८ गाड़ी ९ नाव, १० सिर पर टोकरी ले जाती हुई स्त्री १२ घोड़ा और सवार १२ वृत्त केभीतर स्वस्तिक १३ मछली १४ कलश १५ तीर कमान १६ साइकिल १७ रेल का इंजन १८ फसल काटता हुआ किसान तथा १९ फावड़ा और बेलचा ।

४ गुजरात	१ साइकिल २ शेर ३ उदीयमान सूर्य ४ तराजू ५ दो पत्तियां ६ घोड़ा ७ कलश ८ गौरैया ९ रेल का इंजन १० नाव तथा ११ हलधर।
५ हरयाणा	१ साइकिल २ हाथ ३ घोड़ा ४ तराजू ५ दो पत्तियां ६ हाथी ७ हल ८ शेर ९ नाव १० ट्रैक्टर ११ हलधर तथा १२ वृत्त के भीतर स्वस्तिक।
६ जम्मू और काश्मीर	१ साइकिल २ नाव १ उदीयमान सूर्य ४ तराजू ५ हाथ ६ दो पत्तियां ७ फावड़ा ८ गाड़ी तथा ९ कार।
७ केरल	१ साइकिल २ नाव ३ तराजू ४ दो पत्तियां ५ रेल का इंजन ६ गौरैया ७ रहट तथा हल ८ कलश ९ ऊँट १० मशाल ११ उदीयमान सूर्य १२ फलों सहित नारियल का पेड़ तथा १३ वृत्त के भीतर स्वस्तिक।
८ मध्यप्रदेश	१ साइकिल २ घोड़ा और सवार ३ शेर ४ उदीयमान सूर्य ५ दो पत्तियां ६ अनाज बरसाता हुआ किसान ७ हलधर ८ रेल का इंजन ९ कलश १० तीर कमान तथा ११ वृत्त के भीतर स्वस्तिक।
९ महाराष्ट्र	१ साइकिल २ घोड़ा ३ शेर ४ उदीयमान सूर्य ५ तराजू ६ दो पत्तियां ७ कलश ८ गौरैया ९ रेल का इंजन १० नाव ११ हलधर तथा १२ वृत्त के भीतर स्वस्तिक।
१० मैसूर	१ साइकिल २ शेर ३ उदीयमान सूर्य ४ दो पत्तियां ५ हाथी ६ फावड़ा ७ हलधर ८ फसल काटता हुआ किसान ९ गाड़ी तथा १० ट्रैक्टर।
११ नागालैण्ड	१ हाथी २ हार्नबिल ३ चीता ४ मग, तथा ५ लाग ड्रम।
१२ उड़ीसा	१ साइकिल २ घोड़ा ३ शेर ४ दो पत्तियां ५ रहट तथा हल (हलचक्का) ६ ऊंट ७ तीरकमान ८ नाव ९ रेल का इंजन तथा १० कलश।

१३ पंजाब	१ साइकिल २ घोड़ा और सवार ३ शेर ४ दो पत्तियाँ ५ उदीयमान सूर्य ६ हाथी ७ हलधर ८ वृत्त के भीतर स्वस्तिक ९ उड़ने के लिए तत्पर गरुड़ १० ऊँट ११ तीर कमान १२ रेल का इंजन १३ ट्रैक्टर तथा १४ मशाल ।
१४ राजस्थान	१ साइकिल २ ऊंट ३ घोड़ा ४ उदीयमान सूर्य ५ तराजू ६ हलधर ७ हाथी ८ दो पत्तियां ९ शेर, तथा १० नाव ।
१५ तामिल नाडू	१ साइकिल २ शेर ३ तराजू ४ फावड़ा ५ दो पत्तियां ६ हाथी ७ कलश ८ गोरैया ९ नाव १० ऊंट तथा ११ वृत्त के भीतर स्वस्तिक ।
१६ उत्तर प्रदेश	१ साइकिल २ घोड़ा और सवार ३ शेर ४ उदीयमान सूर्य ५ तराजू ६ हाथी ७ वृत्त के भीतर स्वस्तिक ८ रहट तथा हल (हलचक्का) ९ रेल का इंजन १० दो पत्तियां ११ कलश १२ नाव १३ गोरैया १४ ऊंट १५ मशाल १६ सिलाई की मशीन १७ ट्रैक्टर १८ तीर कमान १९ हस्तचालित पम्प २० कार तथा २१ फसल काटता हुआ किसान ।
१७ पश्चिमी बंगाल	१ साइकिल २ उदीयमान सूर्य ३ तराजू ४ दो पत्तियां ५ घोड़ा और सवार ६ कबूतरों का एक जोड़ा ७ हलधर ८ हाथी ९ वृत्त के भीतर स्वास्तिक १० रेल का इंजन ११ पोत १२ मशाल १३ ऊंट १४ कलश १५ सिलाई की मशीन १६ ट्रैक्टर १७ हस्त चालित पम्प १८ तीर कमान १९ फसल काटता हुआ किसान २० रेडियो २१ मछली २२ उड़ने के लिए तत्पर गरुड़ तथा २३ सिर पर टोकरी लेजाती हुई स्त्री ।

१८ दिल्ली	१ साइकिल २ शेर ३ उदीयमान सूर्य ४ तराजू ५ दो पत्तियां ६ घोड़ा और सवार ७ हाथी ८ नाव तथा ९ हलधर।
१९ गोवा दमण और दीव	१ साइकिल २ घोड़ा ३ तराजू ४ फावड़ा ५ दो पत्तियां ६ नाव ७ कलश ८ ऊंट।
२० हिमाचल प्रदेश	१ साइकिल २ शेर ३ उदीयमान सूर्य ४ तराजू ५ दो पत्तियाँ ६ रेल का इंजन ७ गोरैया तथा ८ नाव।
२१ मणिपुर	१ साइकिल २ घोड़ा ३ शेर ४ तराजू ५ दो पत्तियाँ ६ फावड़ा ७ ऊँट तथा ८ कलश।
२२ पांडिचेरी	१ साइकिल २ घोड़ा और सवार ३ फावड़ा ४ तराजू ५ दो पत्तियाँ ६ शेर ७ गोरैया, तथा ८ रेल का इंजन।
२३ त्रिपुरा	१ साइकिल २ घोड़ा ३ उदीयमान सूर्य ४ तराजू ५ दो पत्तियाँ ६ फावड़ा ७ कलश ८ गोरैया तथा ९ वृत्त के भीतर स्वस्तिक।
२४ अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह।	१ साइकिल २ नाव ३ तराजू ४ दो पत्तियाँ तथा ५ उदीयमान सूर्य।
२५ चण्डीगढ़	१ साइकिल २ घोड़ा ३ तराजू ४ दो पत्तियाँ ५ रेल का इंजन ६ ट्रैक्टर ७ नाव तथा ८ ऊँट।
२६ दादर और नागर हवेली	१ साइकिल २ घोड़ा ३ तराजू तथा ४ दो पत्तियाँ।
२७ लक्कादीव, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप समूह	१ साइकिल २ नाव ३ तराजू ४ दो पत्तियाँ ५ फावड़ा ६ घोड़ा ७ ऊँट तथा ८ हाथी।
२८ मेघालय	१ साइकिल २ नाव ३ शेर ४ तराजू ५ फावड़ा ६ दो पत्तियाँ ७ गोरैया ८ कलश, ९ रेल का इंजन तथा १० ऊँट।

हरियाणा की गृह निर्माण-योजना

—डा० विष्णुदत्त भारद्वाज,

● हरियाणा की आंचलिक संस्कृति तथा उसकी आधार-भूमि के विशेषज्ञ।

————

हरियाणा आर्य संस्कृति का प्राचीनतम केन्द्र था। इस प्रदेश की गृह निर्माण शब्दावली के अध्ययन से वैदिककाल, पौराणिक काल, मुस्लिम काल, एवं अंग्रेजी काल की गृहनिर्माण योजना के अवशेष की जानकारी मिलती है। अतः हरियाणा की गृह निर्माण योजना भारतीय भवन निर्माण कला का महत्वपूर्ण अंश है। प्रस्तुत लेख में हरियाणा की गृह निर्माण शब्दावली की सविस्तर व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

१—गृह के विभिन्न भाग :

कच्ची ईंटों का बनाया हुआ रहने का स्थान 'घर', 'ढूंढ' कहलाता है। कभी-कभी पुराने मकान केलिए भी 'ढूंढ' शब्द प्रयुक्त होता है। पक्की ईंटों से बनेहुए मकान को 'भैल्ली' (हि०), 'हैल्ली' (रो०) कहते हैं। जिस पक्के मकान में बहुत से घर बने होते हैं उसे 'हवेली', 'कटरा', (दिल्ली) कहते हैं। सुरक्षा के लिये घर या गाँव के चारों ओर चारदीवारी खैंची जाती थी जिसे 'चुभीता' (चतुर्भित्ति, सं०) कहते हैं। एक जाति या परिवार के घरों में जाने के लिये जो मुख्य द्वार होता है उसे भी दरवाजा कहते हैं। आजकल प्रत्येक घर के द्वार को भी 'दरवाजा', ('द्वार' 'वार') वारणा (हि०, क०) कहते हैं। दरवाजे के दाहिनी ओर बाई ओर जो चौकोर और ऊँचा स्थान बना हुआ होता है उसे 'चौंतरा' कहते हैं। चौंतरा ग्रामीणों की सवेरे और शाम

की बैठक है। जिस पर बैठकर किसान अपने पड़ोसियों के साथ हुक्का पीता है और बातचीत करता है। चौंतरे का छोटा आकार 'चौंतरी' कहलाता है। मुख्य द्वार की महराब को 'डाट' कहते हैं। उसके दरवाजे से सटी हुई दो चौंतरियाँ ढाई फुट चौड़ी बनी हुई होती हैं जिन्हें 'सहन्ची' (दि०) (चोंकली-मेरठ) कहते हैं। घर का मुख्य द्वार 'पोली' (हि०, क०, रो०) (प्रतोलिका, सं०) कहलाता है। मुख्य द्वार वाले कमरे को 'पोली', 'धलीज' (दहलीज), 'दरवाजा' कहते हैं। पोली के आगे जो ढलानदार ईंटों का जमाव किया जाता है उसे 'खडोन्जा' या 'घडोंजा' (हि०), 'खरन्जा' (दि०), कहते हैं। चौखट के ऊपर के भाग को 'बारूथा' कहते हैं।

(२) मुख्य द्वार की 'चौखट' (चतुःकाष्ठ-प्रा० चउकष्ठ-चौखट) की दाईं और बाईं ओर का भाग 'कौला' (कौरा, प्र०) कहलाता है। चौखट की दाईं और बाईं ओर की लकड़ी को 'बाजू' कहते हैं। इसके ऊपर के भाग की लकड़ी 'सेरू' और 'सरदल' और नीचे के भाग की लकड़ी 'देहली' (दि०), 'देहल' (रो०) कहलाती है। चौखट और कौले के बीच में जो दीवार की किनारी होती है उसे 'कूणा' (हि०), 'कोणा' (रो०) कहते हैं कोणे के साथ ही गड्ढा खोदकर हुक्का भरने के लिये आग रखी जाती है जिसे 'धूणी' (हि०), 'पुरे' (रो० दि०), (पूर्यंते, सं०) कहते हैं। कुछ घरों के मुख्य द्वार के दायें और बायें अग्नि रखने के लिये गोलाकार मिट्टी का 'हारा' रखा होता है। हारा रखने की छायादार या छत्तदार जगह को 'ओटड़ी' 'हारी' कहते हैं।

३—गृह के अन्तरंग भाग :

'पोली' मरदानी बैठक है। जिस पोली में शहतीर लगा हुआ नहीं होता है उसे 'इकड़िया' कहते हैं। जिस पोली में एक शहतीर लगा होता है उसे 'दुकड़िया' कहते हैं। जिसमें दो शहतीर लगे होते हैं उसे 'तिकड़िया' कहते हैं। जिसमें तीन शहतीर (संघिर, हि०) लगे होते हैं उसे 'चुकड़िया' कहते हैं। अतिथियों के ठहरने की बैठक के लिये लोकगीत में 'साल' शब्द आया है। घर बनाने के लिये नींव खोदी जाती हैं उसे 'नीम' (नेमि, सं०) कहते हैं। नीम खोदते हुए लम्बाई और चौड़ाई में जो टेढ़ापन रहता है उसे 'कारा' कहते हैं। मकान की चौड़ाई को 'सार' कहते हैं। दीवार को 'कांध' (स्कन्ध, सं०), 'भींत' (भित्तिका, सं०) कहते हैं। दीवार में ही सामान रखने के लिये दो ईंट की जगह कमरे के अन्दर की ओर रख ली जाती है

जिसे 'ग्राला' कहते हैं। पोली में शहतीर टेकने के लिये लम्बाई की दीवार के मध्य में जो ईंटों का जमाव किया जाता है उसे 'पिलपाया' (फा०, फीलपाया) कहते हैं। इस पर शहतीर टेका जाता है।

पोली का एक द्वार मुख्यद्वार होता है और दूसरा द्वार घर के अन्दर की ओर होता है, जो घर के सहन में खुलता है। सहन को 'आँगण', 'चौंक', कहते हैं। आँगण के बाद जनानी बैठक आती है जिसकी प्राय: चौड़ाई १० फुट और लम्बाई ३० फुट तथा ऊँचाई ८ फुट होती है। जनानी बैठक को 'दलान' (दि०), 'साल' (रो०), 'विसाला' (हि०) (द्विशाला, सं०) कहते हैं जिसमें दो कोठे होते हैं। यह इकड़िया, दुकड़िया, तिकड़िया, चुकड़िया और पचकड़िया होती है। इसमें ही स्त्रियाँ चक्की चलाती हैं और चरखा कातती हैं। कुछ गाँवों में साल की 'रौंस' (रविश, फा०) भी कहते हैं। इसमें ही अनाज रखने के लिये एक दीवार खड़ी करके 'बुखारी' बनाई जाती है।

अनाज और घर के सामान रखने के कमरे 'कोट्ठे', 'ओबरे' कहलाते हैं। हिसार जिले में मकान की अन्तिम दीवार वाला कमरा 'सुफा' भी कहलाता है। छोटे कमरे को 'ओवरी' (अपवरक सं०) भी कहते हैं जिसमें ईंधन इत्यादि रखते हैं। मकान की छत के नीचे कुछ छोटा सा भाग छपा लिया जाता है जिसे 'पड़छती' कहते हैं। इसमें गुड़ इत्यादि सामान भरकर रखा जाता है।

आँगण में स्त्री उठती, बैठती, सोती और घर का काम करती हैं। चौंक मर्दों के उठने, बैठने के काम आता है और इसमें पशु भी बाँधे जा सकते हैं। अत: कहीं-कहीं चौंक को 'ग्वाड़ी' भी कहते हैं। चौंक का प्रयोग 'बगड़' के अर्थ में भी होता है। दो कोठों के आगे जो बरामदा होता हैं उसे "बिसाला" कहते हैं। यदि बिसाले में तीन दरवाजे हों तो उसे 'सदरा' (क०), 'सिदरा' (फा०), 'तिवारा' (त्रिद्वारि, सं०) कहते हैं। छत के ऊपर जो हवादार कमरा बनाया जाता है उसे 'चुबारा' (चतुर्द्वार, सं०) कहते हैं। दालान का फर्श 'चौकबन्दी' कहलाता है। घर की सतह के नीचे बना हुआ कमरा 'भौंरा' कहलाता है जिसे संस्कृत में 'भूमिगृह' कहते हैं। जिस घर के 'पछीत', (ह०) (पृष्ठभाग), दायें बायें पड़ोसियों के घर होते हैं उसके कमरे की छत का बरसाती पानी उतारने के लिये 'पतनाला' (प्रणाल सं०) घर में चौक की ओर लगा होता है। 'पतनाला' (पहंतनाला) किनारेदार एक हाथ

लम्बी नाली सी होती है जिसे कुम्हार आवें में पकाकर बनाता है। पतनाले से पड़ता हुआ पानी और घर के नहाने धोने का पानी जिस नाली के द्वारा घर से बाहर निकाला जाता है उसे 'मोरी' कहते हैं। मोरी का पानी घर के बाहर एक गड्ढे में एकत्र किया जाता है जिसको 'चभच्चा' (रो०), 'चहबच्चा' (फा०), 'चुभच्चा' (क०), 'घड़ोई' (हि०), ('घटवती', सं०) कहते हैं। घड़ोई के पानी को चूहड़ा (भंगी) बाल्टी में भर कर गाँव से बाहर फेंकता है। कोठे के कोने में जो सामान रखने की अलमारी सी या खिड़की सी बनाई जाती है उसे 'तावकी' (अ०, ताक) कहते हैं।

(४) मकान की छत को 'छांत' कहते हैं। छत पर चढ़ने के लिये जो जीना बनाया जाता है उसे 'पैड़काला' कहते हैं। जीने में बनी हुई ताक को 'अटारी' (रो०) कहते हैं। दीवारों को आठ फुट ऊँचा उठाने पर छत डाली जाती है। छत डालने में पहले कड़ियां रखी जाती हैं। इन कड़ियों के ऊपर 'कैर' (करील) के छोटे टुकड़े रखे जाते हैं जो कि 'बरगे' (फा०) कहलाते हैं। 'बरगों' पर घास या सरपत या ('पर्ण' सं०) झूंड के पत्ते जिसे 'पांहनी' कहते हैं, डालते हैं। फिर इस पर मिट्टी डाली जाती है। इस प्रकार की छत को 'कच्ची छांत' कहते हैं। जिस छत पर बरगों पर ईंटों से और चूने से चिणाई होती है उसे 'पक्की छांत' कहते हैं। छत के जिस सुराख से वर्षा का पानी घर में टपकता है उसे 'मौरा' कहते हैं। मौरा बन्द करने के लिए 'मून्दना' (मुद्र, सं०) धातु प्रयुक्त होती है। वर्षा के कारण दीवारों पर पानी का प्रकट होना या छत से चूना 'चौआ' कहलाता है। टपटप की आवाज करते हुए बरसाती पानी का टपकना 'टपका' कहलाता है। वर्षा के कारण घर के आंगन और गलियों में कीचड़ हो जाता है। इस कीचड़ को सुखाने के लिये ईंट पकाने वाले स्थान से गर्म मिट्टी लाई जाती है जिसे 'खोरा' कहते हैं। जिस स्थान से खोरा लाया जाता है उसे 'पंजावा' कहते हैं।

घर का चौका या रसोईघर :

जिस चबूतरे पर या कमरे में रोटी बनाई जाती है उसे 'रसोई', 'चौंका' कहते हैं। चौके की मुख्य वस्तु चूल्हा (सं० चुल्लि) है जिसमें रोटी बनाई और सेकी जाती है। जिस चूल्हे को एक स्थान पर जमाया जाता है उसे 'जमाऊ' (हि०) कहते हैं। जिस चूल्हे को इच्छानुसार कहीं भी उठाकर ले जाया जा सकता है उसे 'उठाऊ'

(हि०) 'ठामा' (क०) कहते हैं। चूल्हे के पैंदे को 'तली' कहते हैं। तली के चारों ओर नीचे चार गोले से लगे होते हैं जिन्हें 'पाये' कहते हैं। चूल्हे को तीन ओर से ईंटों से चिना जाता है। इन तीनों भागों को 'बराहु' कहते हैं। चूल्हे का अग्रिम भाग 'राया' (हि०), 'बेवणी' (हि० बा०) कहलाता है जिसमें प्रज्वलित लकड़ियाँ होती हैं। जिस भाग में रोटी सिकती है वह 'बेवणी' 'गही' (दि०) कहलाता है। यहीं एक त्रिशंकु आकार का एक टुकड़ा रखा जाता है जिसके सहारे रोटी सेकी जाती है। यह टुकड़ा 'थूमा' (दि०) कहलाता है। ईंधन रखने का स्थान भी चूल्हे के साथ बनाया जाता है जिसे 'गुसरैन्डी' (हि०), 'छारन्डी' कहते हैं। चूल्हे के पिछले भाग में दाल इत्यादि गरम करने के लिए जो चूल्हा बनाया जाता हैं उसे 'उला' चूल्हा कहते हैं। 'ऊल की चूल' में मुहावरा है।

भोजन और भजन एकान्त में ही करना चाहिए। इसलिए चौके के साथ एक दीवार परदे के लिए खड़ी कर दी जाती है जिसे 'ओटड़ी' कहते हैं। 'ओटड़ी' में एक गोल सुराख कर दिया जाता है जिसे 'मोगा', 'मोघ' कहते हैं।

(६) रसोईघर में प्रत्येक व्यक्ति के जीमने के लिये आयताकार खाने बना दिये जाते हैं जिन्हें 'क्यारी' (केदारिका, सं०) कहते हैं। क्यारी के किनारे गार (गीली मिट्टी) से बनाये जाते हैं जिनको 'बाट' कहते हैं। रसोई में दीवार के साथ-साथ गार से लगभग तीन फुट ऊँची दीवार खड़ी करके उसको लकड़ी से छाप दिया जाता है। छपे हुए स्थान के नीचे ३ या ५ आले से भी छोड़े जाते हैं। इस प्रकार बनाये गए स्थान को 'पंजाल' (पंजालिका, सं०) कहते हैं। बर्तन रखने के लिए जो स्थान बनाया जाता है उसे बसौन्डी कहते हैं। पानी के घड़े रखने के लिए बनाये गये स्थान को 'पहेन्डी' (हि०), 'पलहैन्डी' (दि०) कहते हैं। रसोई के धुएँ को बाहर निकालने के लिये जो सुराख छत में किया जाता है उसे 'मोघ' (हि०) 'धुँआला' (दि०) कहते हैं।

(७) चौके का धुँआ उठकर ऊपर को जाता है। लगातार धुएँ से रसोई की कड़ियों के पास धुएँ से बने कुछ तार से लटक जाते हैं जिन्हें 'जाला' कहते हैं। दीपक रखने के लिए जो मिट्टी का आला सा बनाया जाता हैं उसे 'दीवाला', 'टोडी' (हि०) कहते हैं। दीपक के बुझाने के लिये 'निन्दाणा' धातु प्रयुक्त होती है। लोहे की सुराखदार टोकरी को रस्सी से बाँधकर कड़ी से बाँध दिया जाता है जिसे 'छींक्का' कहते हैं। छींक्के में रोटियां रखी जाती हैं। (सं०, शिक्यक)। जिस गोलाकार घेरे

में दूध गरम रखा जाता है उसे 'हारा' कहते हैं। हारे का छोटा रूप 'हारी' कहलाती है। हारे में जो उपले लगाये जाते हैं उन्हें 'गोस्से, (गोसर्ग सं०) कहते हैं। गोस्सों को गोल घेरे के रूप में जलाने के लिये जमाना 'छारा' कहलाता है। गोस्से के छोटे रूप को 'गोसटी' कहते हैं। गोस्से के टूटे हुए छोटे टुकड़े 'करस' (करीष, सं०) कहलाते हैं। रसोई में ही दीवार के सहारे एक छोटी सी डंडी गड़ी रहती है जो दूध चलाने के काम में आती है उसे 'नेई' कहते हैं। रसोई के बाहर एक कोण में बर्तन साफ करने के लिये राख का ढेर कर लिया जाता है जिसे 'राखुन्डा' कहते हैं। आवें में पकाकर बनाई हुई मिट्टी की एक कुंडी 'उँखली' कहलाती है। यह रसोई के बाहर आँगण में गाड़ दी जाती है। उँखली में अनाज डालकर 'मूसल' से छड़ा जाता है। मूसल की चोट से उतरा हुआ अनाज का छिलका 'लाली' कहलाता है।

(८) छत के चारों ओर जब दीवारें थोड़ी-थोड़ी ऊपर को उठा दी जाती हैं तब उन्हें 'मंडेर' कहते हैं। कोठे की लम्बाई वाली दीवार को 'भींत' और चौड़ाई वाली दीवार को 'पात्था' (प्रस्थ, सं०) कहते हैं। भींत और पात्था की मोटाई 'सार' कहाती है। भीत में जहाँ से मंडेर शुरू होती है. वहाँ से कुछ नीचे की ओर लम्बाई में कुछ एक पट्टी सी निकाली जाती है जिसके ऊपर कुछ डंडे से गाड़ दिये जाते हैं। उन डंडों को 'टोडे' कहते हैं, और पट्टी को 'मगजी' (हि०), गर्दनी (क०) 'गर्दना' (रो०) कहते हैं। 'टोंडापट्टी' डेढ़ ईंट के सार की होती है। बड़ी छान को 'छाप्पर' और छोटी छान को 'टपरी' कहते हैं। टपरी में जो सुराख होते हैं उन्हें 'मोघ' कहते हैं।

छत की मंडेरों को मजबूत बनाने के लिए लीपते हैं। लीपने के लिए चिकनी मिट्टी और गोबर को पानी में भिगोकर एक जान किया जाता है जिसे 'तगार' कहते हैं। 'तगार' की तैयार हुई मिट्टी 'गारा' कहलाती है। 'गारा' से ही मंडेर को लीपा जाता है। लीपी हुई मुंडेर से जो टुकड़े टूटकर या फटकर गिर जाते हैं उन्हें 'लेवड़' (लेपकरा, सं०) कहते हैं। मंडेर के नीचे यदि गर्दना कुछ अधिक चौड़ा होता है तो उसे 'नेह' कहते हैं। घर के मुख्य द्वार पर छोटी-छोटी फटी हुई लकड़ियों से बनाई गई छाँया को 'छज्जा' कहते हैं। कपास के पौधे की लकड़ियों (वछन्टी, हि०,) को बुनकर जो जाल बनाया जाता है उसे 'किड़ा' (किटक, सं०) कहते हैं। किड़े से बनी हुई छत 'किड़े की छाँत' कहलाती है। छत को बनाने के लिये जो नीम या कैर

की लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े किये जाते हैं वे 'करंजा', 'बरंगा' (हि०) कहलाते हैं। करंजों से छापी हुई छत 'करंजेदार छांत' कहलाती है।

(९) कमरों में हवा आने के लिए जो खिड़कियां बनाई जाती हैं उनको 'झांकी' कहते हैं। लोहे की सलाखों से जड़ी हुई चौखठे की खिड़की को 'जंगला' कहते हैं। जंगले के ऊपर दीवार में बनी हुई एक चन्द्राकार महराव 'डाट' कहलाती है। डाट के नीचे की ओर किनारे खमदार मोड़े हों तो उसे 'बंगला' कहते हैं। पानी रखने के लिये जो स्थान बनाया जाता है उसे 'पहँडी' (हि०) ('पाल माण्डिका' सं०) 'पलैहन्डी' (रो०) कहते हैं। सामान रखने के लिए, कमरे की चौड़ाई के रुख में लम्बाई वाली दीवारों में दो कड़ियाँ डालकर और उन्हें तख्तों से जड़कर जो स्थान बनाया जाता है उसे 'टाँड' कहते हैं। कपड़े टाँगने के लिए कमरे में जो रस्सी बाँधी जाती है उसे 'बिलंगनी', 'अलगनी' (कौ०), ('लंगनी' सं०) कहते हैं।

निवास तथा भंडार सम्बन्धी अन्य स्थान :

(१०) गाँव के किसानों की सामूहिक रूप से बनाई गई मरदानी बैठक को 'चुपाड़' (क०), 'चौपाड़' (दि०), 'थ्याई' (क०), 'थाई' (क०), 'हथाई' (हि०), 'परस' (हि०) कहते हैं। यह दुकड़िया, तिकड़िया, चुकड़िया और पंचकड़िया होती है। गाँव के बयोवृद्ध पुरुष (बुड्ढे, ठेरे ह०) खाना खाने के बाद हथाई में ही विश्राम करते हैं और मनोविनोद के लिए ताश और चौपड़ इत्यादि खेल खेलते हैं। बरात इत्यादि को भी यहीं ठहराया जाता है। सामाजिक उत्सव जैसे रामलीला आदि का भी आयोजन यहीं होता है, जिसे 'लीला' कहते हैं। स्वाँग भी यहीं पर आयोजित होते हैं जिन्हें 'साँग' कहते हैं। 'थ्याई' में द्वार के स्थान पर चार या पाँच सीढ़ी या पैड़ी होती हैं जिसके साथ-साथ तीनों ओर ४ फुट चौड़ी पटरीदार दीवार सी बनी हुई होती है जिसे 'जेह' कहते हैं। जीने से प्रविष्ट होते ही सहन होता है जिसे 'आँगन' कहते हैं। आँगन के बाद लम्बा तथा चौड़ा कमरा 'हथाई' कहलाता है जिसमें से एक जीना ऊपर को जाता है। यह जीना 'पेड़काला' कहलाता है। हथाई की दूसरी मंजिल पर महराबदार दरवाजों का खुला कमरा बना होता है। ये दरवाजे 'बारजे' कहलाते हैं। सामान रखने के लिए कुछ कोठरियाँ भी बनी होती हैं। नीचे की मंजिल में जीने के साथ ही एक अग्नि रखने का स्थान बनाया हुआ होता है जिसे 'धूणा' (हि०), 'अगनकुन्ड' (क०) कहते हैं। थ्याई की देखभाल रखने के लिए एक

साधु यहां रहता है जो गाँव से भिक्षा माँग लाता है। यह भिक्षा 'ज्याणी' (यज्ञ, जग, जाग, जाणी, सं०) कहलाती है।

किसान अपने घर के कोठे के सहारे एक 'पल्लड़' का छप्पर सा डाल लेता है जिसे 'उसारा' (रो०) कहते हैं। उसारे को साधने के लिए दो लकड़ियाँ जमीन में गाड़नी पड़ती हैं जिन्हें 'थाम्बी' (स्तम्भ सं०), 'थूणी' कहते हैं। थाम्बी (थूणी) के ऊपरी सिरे 'दुसखे' (द्विशंकु, सं०) होते हैं। उन पर 'बाला' (हि०), 'बली' (रो०) रख दिया जाता है जो एक मोटा और लम्बा लक्कड़ होता है। यदि थाम्बी छोटी रह जाती है, तो उन्हें ऊँचा उठाने के लिए उनके ऊपर दो तीन लकड़ी के टुकड़े लगा देते हैं जिन्हें 'टिकाण' कहते हैं।

(११) 'गढ़ी' या 'नौहरे' में नीम या पीपल के पेड़ को भी किसान उगा लिया करते हैं। उन वृक्षों की छाँह के नीचे पशुओं को बांधा जा सकता है और किसान भी गर्मी में यहां बैठकर शीतलता का लाभ उठा सकता है जिसे 'सीलक' कहते हैं। जेठ की दोपहर की धूप को 'धौला' या 'सिखर' 'दुफारा' कहते हैं। किसान वृक्षों की छाँह में खाट बिछाकर पछवा हवा की मन्द गति का आनन्द लेता है पछवा हवा को 'पिछवा' कहते हैं। पिछवा का मन्द गति से चलना 'रमक' (हि०), 'रमका' (क०) कहलाता है।

जनवरी और फरवरी के ४० दिन को 'चिल्ला' कहते हैं। इन दिनों सर्दी के कारण ठिठुर कर सुन्न हो जाते हैं। इस जाड़े के उत्पन्न हुई ठण्ड को 'ठिठर' कहते हैं। ठिठर के कारण अंगुलियों की अगली पोरियाँ सूज जाती हैं जिसे 'टोंट कहते हैं।

पेड़ों की 'पेड्डी' के ऊपर की हरी छाल को 'बक्कल' कहते हैं। वृक्ष की सूखी हुई छाल 'छोड्डा' कहलाती है। वृक्षों की छाल के छोटे-छोटे टुकड़े 'सराक' कहलाते हैं। सराकों को धूणी, पूर में डालकर किसान अपनी 'ठिर' (जड़ता) को मिटाता है।

महाभारत में इतिहास (५)

गुरुदत्त

● हिन्दी के सोद्देश्य तथा सफल उपन्यासकार तथा
वैदिक चिन्तन के सम्पोषक

————

इससे पूर्व के लेख में लिख आये हैं कि जिस समय ब्रह्म दिन का आरम्भ हुआ, उससे बहुत काल पर्यन्त मूल प्रकृति से → महत → अहंकार → पंच महाभूत बने।

साथ ही अहंकारों से इन्द्रियाँ बनीं। पंच महाभूतों से नक्षत्रादि बने। उन नक्षत्रों से पृथिवी बनी।

इस प्रक्रिया में इतना काल लगा कि उसकी गणना सौर वर्षों में की जाये तो वह ४३२०००००० वर्ष बनते हैं।

इसके अनन्तर पृथिवी पर जल और वायु बने। इनके बनने से पृथिवी पर प्राणी की सृष्टि बनी। पहले वनस्पतियाँ उगीं, तदनन्तर वन पशु बने और अन्त में मनुष्य सृष्टि हुई।

जब हिरण्यगर्भ फटा और पृथिवी बनी, तब से लेकर पृथिवी पर मानव सृष्टि बनने तक कितने वर्ष व्यतीत हो गये ? इसकी भी एक गणना की गयी है। वह इस प्रकार है।

मानव सृष्टि हुई ब्रह्मा के सातवें जन्म से जो कमल में से हुआ। यह सातवें मन्वन्तर के आरम्भ में हुआ था। इस विषय में महाभारत में यह कहा है कि महर्षि भारद्वाज के मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि कमल से उत्पन्न ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई

थी तो ब्रह्मा को आदि प्राणी क्यों माना जाता है ? कमल को क्यों नहीं ? कमल भी तो एक वनस्पति होने से एक प्राणी है। इसका उत्तर भृगु जी इस प्रकार देते हैं :—

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता ।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः ।
तस्य मध्ये स्थितांल्लोकान् सृजते जगतः प्रभुः ॥
(महाभारत—१२-१८२-३७,३८)

इसका अभिप्राय है कि मानस पुरुष का स्वरूप ही ब्रह्मत्व के नाम से कहा गया है। उस मानस के (आसन) रहने के स्थान को पृथिवी जानो। वही कमल कही गयी है।

यह कमल (मनुष्य की उत्पत्ति स्थान) मेरु पर्वत था जो गगन में बहुत ऊंचे तक गया हुआ था। वह कमल की कर्णिका (डण्डी) कही जाती है। उसी पर्वत के मध्यभाग में परमात्मा ने (मानव) लोकों का सृजन किया।

अभी तक हमने सृष्टि रचना के उस भाग पर महाभारत तथा अन्य भारतीय शास्त्रों के अनुसार लिखा है जिसके विषय में वर्तमान विज्ञान अभी कुछ विशेष जानकारी नहीं पा सका। भारतीय सांख्य (Science) यह कहता है—

(१) प्रकृति परमाणुओं में होती है। यह परमाणु वर्तमान सायंस के ऐटम नही। ऐटम परमाणु नहीं। ऐटम लगभग १०२ प्रकार के पता चल चुके हैं। परन्तु प्रकृति के सब परमाणु एक ही प्रकार के हैं। वह विभक्त नहीं हो सकते हैं।

(२) प्रत्येक परमाणु त्रिगुणात्मक है। उस मूल अवस्था में गुण साम्यावस्था में होते हैं। गुणों के आकर्षण-विकर्षण परस्पर ही विलीन हो रहे होते हैं। इन गुणों को सत्त्व, रजस् और तमस् कहते हैं।

(३) गुणों का प्रभाव परस्पर विलीन होने से स्थान पर बाहर की ओर हो जाता है और उससे पड़ोस के परमाणुओं को आकर्षित करने लगते हैं। इससे द्व्यणुक त्र्यणुक इत्यादि बनने लगते हैं। यह सृष्टि का आरम्भ है। इससे मन, बुद्धि, अहंकार पंचमहाभूत इन्द्रियाँ इत्यादि बनती हैं।

(४) अतः प्रकृति से शरीर बनता है और फिर उसमें आत्मा आकर निवास प्राप्त कर लेता है। यह प्राणी बनता है।

(५) पहले वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। वनस्पतियों के उपरान्त इतर जीव बने और अन्त में मनुष्य बने।

इन सबका वर्णन वर्तमान विज्ञान में नहीं है। इसको बनते हुए बहुत समय लगा। इस समय की गणना के लिए यह जान लेना चाहिए कि कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्म की युग कल्पना के अनुसार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में कहा जाता है।

और इस सातवें मन्वन्तर में भी २७ चतुर्युगियां व्यतीत हो चुकी हैं।

इन व्यतीत चतुर्युगियों का काल है— — —	=११,६६,४०,०००	सौर वर्ष
२८ वीं चतुर्युगियों के सत्युग, त्रेता और द्वापर	=३८,८८,०००	,, ,,
२८ वीं चतुर्युगी के व्यतीत कलियुग का काल	५,०७१	,, ,,
कुल व्यतीत काल	१२,०५,३३७०७१	,, ,,

इससे पता चलता है कि वैवस्वत मन्वन्तर का व्यतीत काल १२,०५,३३,०७१ सौर वर्ष के बराबर हो चुका है।

तब मानव सृष्टि हुई थी और ब्रह्मा कमल पर प्रकट हुआ था। यह वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ में ही हुआ था।

अतः मानव सृष्टि को हुए—१२,०५,३३,०७१ सौर वर्ष हो चुके हैं।

यह काल भी इतना लम्बा है कि वर्तमान इतिहासज्ञ मानने को तैयार नहीं।

यह हमारे शास्त्र और महाभारत की गणना के अनुसार है, परन्तु पूर्व की चतुर्युगियों का वर्णन तो कहीं मिलता नहीं। कारण यह कहा गया है कि प्रत्येक चतुर्युगी की समाप्ति पर पृथिवी पर किसी प्रकार का ऐसा उपद्रव होता है कि सब सृष्टि विनष्ट हो जाती है।

अतः वर्तमान सृष्टि वैवस्वत मनु की २८ वीं चतुर्युगी से ही माननी चाहिए। इसे ३२६३०७१ वर्ष हो चुके हैं।

इसमें सत्युग और त्रेता युग की संधि पर एक ऐसा जल प्लावन आया था कि उसमें प्रायः मानव सृष्टि विनष्ट हो गयी थी और बहुत कम मनुष्य बचे थे।

अतः सतयुग का वृत्तान्त तो केवल उनसे कहा हुआ ही मिलता है जो इस प्लावन से बचे लोग थे। ये लोग बहुत कम थे और इनमें पढ़े-लिखे विद्वान् और भी कम थे। यह स्वाभाविक ही है कि यह वृत्तान्त बहुत संक्षिप्त है।

२८ वीं चतुर्युगी के सतयुग का वृत्तान्त जो कुछ लिखा मिलता है, वह इस प्रकार है :—

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात् तु इमाः प्रजाः।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश॥
अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनिः॥
कद्रुश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत।
एतासां वीर्यसम्पन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम्॥

(महाभारत—१-६५-१०,११,१२,१३)

अर्थात्—ब्रह्मा जी के छः महर्षि मानस पुत्र हुए। उनके नाम हैं :—

(१) मरीचि (२) अत्रि (३) अङ्गिरा (४) पुलस्त्य (५) पुलह (६) क्रतु।

मरीचि के पुत्र कश्यप थे और ब्रह्मा के एक अन्य पुत्र दक्ष की तेरह कन्याएँ थीं। इन तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप से हो गया।

कन्याओं के नाम हैं :—

(१) अदिति (२) दिति (३) दनु (४) काला (५) दनायु (६) सिंहिकी (७) क्रोधा (८) प्राधा (९) विश्वा (१०) विनता (११) कपिला (१२) मुनि (१३) कद्रु।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि ब्रह्मा के मानस पुत्रों से अभिप्राय औरस पुत्रों से नहीं। मानस पुत्रों से अभिप्राय शिष्यों से है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा जब उत्पन्न हुए तो उसी प्रक्रिया से अन्य अनेकों मनुष्य भी उत्पन्न हुए। उनमें से उक्त छः महर्षि ब्रह्मा के शिष्य थे। इसी कारण वे मानस पुत्र कहलाये।

इन मानस पुत्रों में एक मरीचि थे। उनके एक पुत्र कश्यप थे। ब्रह्मा के एक अन्य पुत्र थे दक्ष। दक्ष को मानस पुत्र नहीं कहा जाता। अर्थात् वह ब्रह्मा के शिष्य नहीं थे। दक्ष की तेरह लड़कियाँ थीं। इन तेरह के साथ ही कश्यप का समागम हुआ और उनमें से अनेक सन्तानें हुईं।

दक्ष की एक लड़की थी अदिति। उससे बारह पुत्र हुए। ये बारह पुत्र आदित्य कहलाये। इनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) धाता (२) मित्र (३) अर्यमा (४) इन्द्र (५) वरुण (६) अंश (७) भग (८) विवस्वान् (९) पूषा (१०) सविता (११) त्वष्टा (१२) विष्णु।

इन तेरह आदित्यों में इन्द्र, वरुण, विवस्वान् और विष्णु अधिक विख्यात हुए हैं।

दक्ष की एक अन्य लड़की थी दिति। उसका भी विवाह कश्यप से हुआ था और उसके एक पुत्र हिरण्यकशिपु था।

हिरण्यकशिपु के पाँच पुत्र थे। नाम थे :—

(१) प्रह्लाद (२) संह्लाद (३) अनुह्लाद (४) शिवि (५) बाष्कल।

प्रह्लाद के तीन पुत्र थे। (१) विरोचन (२) कुम्भ (३) निकुम्भ ।

प्रह्लाद के ज्येष्ठ पुत्र का नाम था विरोचन और विरोचन के पुत्र का नाम था वरुण।

इस प्रकार सृष्टि वृद्धि होती गयी।

सतयुग के राजाओं और समाज के विषय में भी कुछ बातों का संक्षेप में वर्णन मिलता है। यह हम अगले लेख में लिखेंगे।

ग़ ज़ ल

देशराज शर्मा "कंवल



उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि और समालोचक, ग़ज़ल की आधार-भूमि में दार्शनिक चिन्तन के समर्थक, सम्प्रति हमारी उर्दू परिषद् के उन्नायक।

दुनिया में दिल लगा के बहुत सोचते रहे
काँटों को गुदगुदा के बहुत सोचते रहे

कल सुबह एक डाल पर दो अध खिले गुलाब
थोड़ा सा मुस्करा के बहुत सोचते रहे

क्या जाने चाँदनी ने सितारों से क्या कहा
शब भर वो सर झुका के बहुत सोचते रहे

टूटा कहीं जो शाख़ से गुंचा तो हम वहीं
पहलू में दिल दबा के बहुत सोचते रहे

बढ़ते हुए जहां के अंधेरों में हम कभी
शम्में जला जला के बहुत सोचते रहे

क्या जाने किस लिए वो नजर के सवाल पर
हम से नजर बचा के बहुत सोचते रहे

बे कैफ़ अबकि बार रहा मौसम-ए बहार
हम आशियां जला के बहुत सोचते रहे

इतना तो याद है कि मुहब्बत के ज़िक्र पर
होंटों को वो दबा के बहुत सोचते रहे

हाथों से गिर के चूर हुआ जाम जब "कंवल"
टुकड़े उठा उठा के, बहुत सोचते रहे

आयुर्वेद में ब्रह्मविद्या : 'आयुर्वेदोपनिषद्'

आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा

प्राचार्य, आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, नयी दिल्ली-५

———

'आयुर्वेदोपनिषद्' यह शीर्षक देख कर ही अनेक पाठक चौंकेंगे अवश्य; -- यह 'आयुर्वेदोपनिषद्' कहाँ से आ गयी ! परन्तु यह उपनिषद् कोई कपोल-कल्पना नहीं है। यत्र-तत्र अनेक स्थलों पर इसके कुछ पद्य-खंड इन पंक्तियों के लेखक को उपलब्ध हुए हैं, एवं कुछ पद्य तो खण्डित एवं अशुद्धि-प्रचुर रूप में एक ही स्थान पर प्राप्त हो गये हैं। उस प्राप्त सामग्री को संशुद्ध एवं सुग्रथित करके यहाँ निबद्ध किया जा रहा है।

'उपनिषद्' का अर्थ:—

'अमरकोष' में इस शब्द के दो अर्थ बताये गये हैं— 'धर्म' एवं 'रहस्' (एकान्त, गोप्यता, गोप्य-रहस्यमय विषय) १। मेदिनी-कोष में तीन अर्थ लिखे हैं— 'धर्म', 'वेदान्त' एवं 'विजन'२ (एकान्त, आदि); अर्थात्, एक 'वेदान्त'-अर्थ अधिक दिया है। इस प्रकार, 'उपनिषद्' शब्द के अर्थ तीन प्रकार के बनेंगे–'धर्मशास्त्र,' 'वेदान्तविद्या' एवं 'रहस्यविद्या'। अधिकसंख्यक उपनिषदें धर्मपरक एवं वेदान्तपरक हैं। यों, 'वेदान्त' भी 'धर्म' के ही अन्तर्गत आ जाता है। 'रहस्य-विद्या' भी कतिपय उपनिषदों का विषय है। 'कामशास्त्र' को एवं आयुर्वेद के एक अंग 'वाजीकरण-तन्त्र' को इसीलिये कुछ स्थानों पर 'औपनिषदिक' भी कहा गया है।३ कुछ तान्त्रिक

---

१. 'धर्मे रहस्युपनिषत्' (अमरकोष ३.३.६३)।

२. 'भवेदुपनिषद् धर्मे वेदान्ते विजने स्त्रियाम्' इति मेदिनी।

३. 'कुचुमार औपनिषदिकमिति' (वात्स्यायन-कामसूत्र)।

एवं वाममार्गीय उपनिषदों१ में तो धर्म एवं रहस्यविद्या की आड़ में खुले व्यभिचार की ही शिक्षा दी गयी है।२ परन्तु, 'आयुर्वेदोपनिषद्' इस कुत्सित वर्ग से सर्वथा पृथक् है। वस्तुतः धर्म एवं दर्शन के परिधान में एक प्रकार की वैज्ञानिक-आध्यात्मिक शिक्षा देना इस 'आयुर्वेदोपनिषद्' का ध्येय है।

'उपनिषद्' शब्द की निष्पत्ति वस्तुतः 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग-पूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वादि० परस्मैपदी, अनिट्) से हुई है। अर्थ बनेगा—'साथ बैठना'। वस्तुतः 'उपनिषद्' में कल्याण एवं कल्याणमार्ग निहित एवं उपदिष्ट होता है।३ एक निरुक्ति यह भी है कि गुरु के समीप यथाविधि पहुँच कर नियमानुसार अन्तेवासी रहने वाले को इसका उपदेश दिया जाता है।४ 'उप' का अर्थ है 'समीप', और 'नि' का अर्थ 'निश्चय'; सामीप्य से ऐकात्म्य स्थापित होता है और उस अवस्था में निश्चयपूर्वक चिरकालार्जित अनुभूतियों के आधार पर गुरु जिस-जिस विद्या का उपदेश देता है, वह संसार के बन्धन को काटने (विशरण) वाली होतीहै।५

---

१. यथा—'कामराजकीलितोद्धारोपनिषद्', 'षोढोपनिषद्', गुह्यषोढान्यासोपनिषद्, 'कालीमेधादीक्षितोपनिषद्', 'पीताम्बरोपनिषद्', 'वनदुर्गोपनिषद्', 'सुमुख्युपनिषद्', 'श्रीचक्रोपनिषद्', 'गायत्र्युपनिषद्', 'श्यामोपनिषद्' 'राजश्यामलारहस्योपनिषद्,' 'कालिकोपनिषद्', 'गुह्यकाल्युपनिषद्', 'गायत्रीरहस्योपनिषद्', आदि-आदि।

२. 'न्यसनं न्यासः। सम्यङ् न्यासः सन्न्यासः, न तु मुण्डितमुण्डः।' (गुह्यषोढान्यासोप०)।

३. 'उपनिषदनम्। उपनिषीदति श्रेयोऽस्यां वा। 'षद्लृ विशरणादौ' (भ्वा० प० अ०)। 'सम्पदादिः' (वा०—३.३.१०८)।' (अमरकोष, भानुजी-दीक्षितव्याख्या)।

४. 'उपेत्य नियमयुक्ताय साद्यते उपदिश्यत इत्युपनिषद्। उप-नि-पूर्वात् 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (धातुपाठ १.८५४) इत्यस्मात् सम्पदादित्वात् कर्मणि क्विप्। 'सदिरप्रतेः' (पा० सू० ८.३.६६) इति षत्वम्।

५. 'उपशब्दो हि सामीप्यमाह। तच्चासति संकोचके प्रतीचि पर्यवस्यति। निशब्दश्च निश्चयार्थः। तस्मादैकात्म्यं निश्चितम्। तद्विद्या सहेतुं संसारं सादयतीत्युपनिषदुच्यते।' (इति श्रीमद्भगवत्पादाचार्याः--बृ० भा०)

श्रीमद्भगवत्पादाचार्य सुरेश्वराचार्य के इस अर्थ का समर्थन सायणाचार्य ने भी किया है।१

उपनिषदों की संख्या :—

पण्डितमण्डलाखण्डल श्रीमान् आद्यशंकराचार्य जी महाराज ने जिन उपनिषदों का भाष्य किया है, उनकी संख्या १० है–ईशावास्य, ऐतरेय, काठक, केन, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, प्रश्न, माण्डूक्य, मुण्डक एवं बृहदारण्यक उपनिषद्। महान् वेदोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज ने 'श्वेताश्वतर' को ग्यारहवीं उपनिषद् के रूप में मान्यता दी है। ये ग्यारहों प्राचीन एवं प्रामाणिक वैदिक उपनिषदें मानी जाती हैं। परन्तु, बाद में धीरे-धीरे प्रायः सभी सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी उपनिषदें पृथक् रच ली हैं और उन्हें वेदों के साथ भी सम्बद्ध कर डाला है।

सामान्यतः, तत्तद् उपनिषद् में प्रतिपाद्य विषय उसके स्वरूप एवं मूल वेद का निर्धारक होता है। इस प्रकार, इन ग्यारह उपनिषदों में 'ऋग्वेद' की 'ऐतरेय' उपनिषद् है, 'कृष्णयजुर्वेद' की 'कठ'—'तैत्तिरीय'— श्वेताश्वतर—उपनिषदें हैं, 'शुक्लयजुर्वेद' की 'ईशावास्य' एवं 'बृहदारण्यक'--उपनिषदें हैं, 'सामवेद' की 'केन' एवं 'छान्दोग्य', तथा 'अथर्ववेद' की 'प्रश्न' (पैप्पलादोपनिषद्)— 'माण्डूक्य' एवं 'मुण्डक'—उपनिषदें मानी जाती हैं। तत्तद् वेद के आधार पर उपनिषदों के प्रारम्भ

---

१. 'अत्र ह्युपनिषच्छब्दो ब्रह्मविद्यैकगोचरः। तच्छब्दावयवार्थस्य विद्यायामेव सम्भवात्॥ उपोपसर्गः सामीप्ये तत्प्रतीचि समाप्यते। सामीप्यात् तारतम्यस्य विश्रान्तेः स्वात्मनीक्षणातं॥ त्रिविधः सदिधात्वर्थो विद्यायां सम्भविष्यति। श्रीमत्सुरेश्वराचार्यैर्विस्पष्टमिदमीरितम्॥ उपनीयेममात्मानं ब्रह्मापास्तद्वयं स्वतः। निहन्त्यविद्यां तज्जं च तस्मादुपनिषद् भवेत्॥
निहत्यानर्थमूलां स्वाविद्याम् प्रत्यक्तया परम्। गमयत्यस्तसम्भेदमतो वोपनिषद् भवेत्॥ प्रवृत्तिहेतून् निःशेषास्तन्मूलोच्छेदकत्वतः। यतोऽवसादयेद् विद्या तस्मादुपनिषन्मता॥-॥ यथोक्तविद्याहेतुत्वाद् ग्रन्थोऽपि तदभेदतः। भवेदुपनिषन्नामा लाङ्गलं जीवनं यथा॥'
[श्रीसायणाचार्याः, तैत्तिरीयोपनिषद्दीपिकायाम्]।

तथा अन्त में पठित 'मंगल' या 'शान्तिपाठ' भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है; तद्यथा—'ऋग्वेदीय' (वाह्वृचीय) उपनिषदों का शान्तिपाठ 'वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता०' से होता है, कृष्णयजुर्वेदीयों का 'सह नाववतु०' १ से, शुक्ल यजुर्वेदीयों का 'पूर्णमदः' २ से। सामवेदीयों का 'आप्यायन्तु०' ३ से, तथा अथर्ववेदीय उपनिषदों का 'भद्रं कर्णेभिः०' ४ मन्त्र से। 'शन्नो मित्रावरुणा' मन्त्र से भी कृष्णयजुर्वेदीय उपनिषदों का मंगल एवं शान्तिपाठ होता है। इस दृष्टि से, मंगल एवं शान्तिपाठ की विशिष्टता के आधार पर भी साम्प्रदायिक उत्तरवर्ती उपनिषदों का सम्बन्ध तत्तद् उपनिषद् के साथ जोड़ दिया गया।

तत्तत् साम्प्रदायिक वर्ग में भी उपनिषदों की संख्या को बढ़ा कर विभक्त किया गया। वे वर्ग हैं—योग, संन्यास, सामान्य वेदान्त, वैष्णव, शैव एवं शाक्त। इस प्रकार, उत्तरोत्तर उपनिषदों की संख्या बहुत बढती गयी। यहाँ तक कि इस्लाम के 'कलमा' के सदृश पाठवाली एक 'अल्ला—उपनिषद्' भी रच डाली गयी, जिसके दो पाठ हमें उपलब्ध हुए हैं।

मौलिक मान्यता-प्राप्त ग्यारह उपनिषदों के बाद प्रकाशित अन्य उपनिषत्संग्रह अनेक प्रकार के उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ—'निर्णयसागर प्रेस, बम्बई' में से दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं—एक २८ का तथा दूसरा १२० उपनिषदों का। 'सर्वहितैषी कम्पनी, रामघाट, काशी' से १०८ उपनिषदों का संग्रह निकला है, जिसमें चार उत्तरतापिनी उपनिषदों को भी यदि पृथक् से गिन लिया जाय, तो संख्या ११२ हो जायगी। अन्य स्थानों से भी इन तीन प्रकारों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

---

१. 'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥," (कठ उप० ६.१६; स्कन्द उप० १; तैत्तिरीय आरण्यक ८.१.१; ६.१.१; तैत्तिरीय उपनिषद् २.१.१; ३.१.१)

२. 'पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥'

३. 'आप्यायन्तु ममांगानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ॥'

४. 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥' (ऋग्वेद १.८६.८)

इसके अतिरिक्त १३, ३३ तथा ७७ वाले संग्रह भी निकले हैं। गुजराती में 'सौ उपनिषदो' नामक संग्रह १०० उपनिषदों का भी निकला है। 'गीताप्रेस गोरखपुर' से भी विविध संग्रह निकले हैं। मद्रास के 'अड्यार पुस्तकालय' ने तीन विभागों में उपनिषदों को बाँट कर १७९ उपनिषदें प्रकाशित की हैं—प्रथम विभाग में ईशावास्य आदि दश उपनिषदें आती हैं, जिन्हें प्रधान या मुख्य (Major) की संज्ञा दी गयी है और जिन पर आद्य शंकराचार्य जी महाराज ने भाष्य रचा था। द्वितीय विभाग (लघु उपनिषदः—Minor Upanishads) में ९८ की गणना करके उहें निम्न-लिखित खण्डों या वर्गों में प्रकाशित किया गया है—योग (२०), सामान्य वेदान्त (२४), संन्यास (१७), वैष्णव (१४), शैव (१५) तथा शाक्त (८)। तीसरे विभाग ('अप्रकाशिता उपनिषदः'; Unpublished Upanishads) में ७१ उपनिषदों का विभाजन इस प्रकार किया गया है—योग (१), सामान्य वेदान्त (२१), वैष्णव (१६), शैव (१५) तथा शाक्त (१८)। इस अन्तिम 'शाक्त' वर्ग में प्रथम है,'अल्ला-उपनिषद्'। परम वेदोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने 'सत्यार्थप्रकाश' के चौदहवें समुल्लास के अन्त में 'अल्ला-उपनिषद्' का एक और भी पाठ१ उद्धृत किया है। अस्तु, अड्यार के प्रथम-द्वितीय विभागों में मंगल एवं शान्तिपाठ देकर तत्तद् उपनिषद् का सम्बन्ध भी बताया गया है तथा 'उपनिषद्-ब्रह्मयोगिन्' नामक विद्वान् की टीका के साथ-साथ ईशादि-क्रम में तत्तद् उपनिषद् का क्रमांक भी दिया गया है। परन्तु तृतीय विभाग में ऐसी कोई विशेषता नहीं है;

---

१. वह पाठ इस प्रकार है — 'अस्माल्लाँ इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते ॥ इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्ददुः ॥ हयामित्रो इल्लाँ इल्लल्ले वरुणो मित्र-स्तेजस्कामः ॥ १ ॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः ॥ अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम् ॥२॥ अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् ॥३॥ आदल्लाबूकमेककम् । अल्लाबूक निखातकम् ॥४॥ अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा ॥ अल्ला सूर्य्यं चन्द्र सर्वनक्षत्राः ॥५॥ अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परमन्तरिक्षाः ॥६॥ अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ॥७॥ इल्लाँ कबर इल्लाँ कबर इल्लाँ इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥८॥ ओम् अल्लाइल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणा श्यामा हुं ह्रीं जनानपशून्-सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट् ॥९॥ असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूलमहमदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥१०॥'

केवल मूलमात्र पाठ दिया गया है । हाँ, 'बाष्वलमन्त्रोपनिषद्' की वृत्ति तथा 'पारमात्मिकोपनिषद्' एवं 'नीलरुद्रोपनिषद्' की व्याख्या अवश्य साथ में दी गयी है । इस प्रकार, 'अड्यार पुस्तकालय' ने १७९ उपनिषदें प्रकाशित की हैं ।

इन सबसे आगे बढ़कर बम्बई-निवासी श्री गजानन शम्भु साधले शास्त्री महोदय ने २३९ उपनिषदोंका संग्रह करके उनके वाक्यों का एक बृहत्कोश 'उपनिषद्वाक्यमहाकोश' सन् १९४०-४१ में 'गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई' से मुद्रित एवं प्रकाशित किया । उन्हें कर्नल जैकब महाशय द्वारा रचित पूर्ववर्ती 'उपनिषद्वाक्यकोश' (Col. Jacob's Concordance of Upanishadic Sentences) अपर्याप्त एवं असन्तोषजनक लगा; और उसमें संग्रह था भी केवल ४५ उपनिषदों का । अतः ७२ वर्ष की वय में उन्होंने सारे भारत से विविध उपनिषदों की पाण्डुलिपियाँ एवं मुद्रित संग्रह एकत्र करके २३९ उपनिषदों का उपरिनिर्दिष्ट महाकोश बनाया । वे 'बृहदुपनिषत्संग्रह' भी प्रकाशित करना चाहते थे, परन्तु नहीं कर सके । प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने उन २३९ के अतिरिक्त तीन और उपनिषदें की प्राप्त की हैं, जिन्हें मिलाकर उपनिषदों की बृहत् संख्या २४२ हो जाती है । इनके अतिरिक्त, एक अन्य उपनिषद् का एक अतिन्यून भाग ही साधले-महाशय के महाकोश में आया है, जबकि इन पंक्तियों के लेखक ने उस चतुर्थ उपनिषद् का अन्य स्थानों से संग्रह करके द्विगुण रूप प्राप्त किया है ।

यह 'आयुर्वेदोपनिषद्'

वह चतुर्थ उपनिषद् है, 'आयुर्वेदोपनिषद्' । 'अड्यार पुस्तकालय, मद्रास' द्वारा प्रकाशित किसी संग्रह में यह उपनिषद् नहीं है । साधले - महाशय के महाकोश में भी केवल आठ (८) पद्य ही पूर्णतः दिये गये हैं, सोलह (१६) पद्यों के केवल दो-दो चरण दिये गये हैं, एक पद्य के तीन चरण हैं तथा तीन पद्य सर्वथा नहीं दिये गये । भावनगर (गुजरात) के दिवंगत श्री भानुशंकर निर्भयराम त्रिवाड़ी महाशय ने सन् १९३५ में प्रकाशित अपनी संस्कृत पुस्तक 'त्रिदोषवादः' (प्राप्तिस्थान ——पं०हरिशंकर भानुशंकर त्रिवाड़ी, बरतेज दरवाज़ा, **भावनगर**, गुजरात) के अन्त में 'आयुर्वेदीयोपनिषद्' शीर्षक से कुछ पद्य दिये हैं जिनकी संख्या २७।। है । उनमें यत्र-तत्र अनेक अशुद्धियाँ अवश्य हैं, तथापि वह पाठ हमें इस संकलन में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है । साधले-महाशय वाले

पाठों के साथ तुलना करके तथा अन्यत्र उपलब्ध सामग्री से मिलान करके एवं आयुर्वेदग्रन्थों (विशेषतः—चरक, सुश्रुत) के आधार पर संशोधित करके हम उन पद्योंको यहाँ व्याख्या के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं ।

विषय, भाषा तथा शैली—

उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'धर्म' एवं 'ब्रह्मविद्या' है, जैसा कि हम पहले बता आये हैं । 'ब्रह्मविद्या' ही वेदान्त है, जहाँ 'वेद' अर्थात् ज्ञान का क्षेत्र समाप्त हो जाता है तथा 'आत्मानुभूति' का ही क्षेत्र रहता है । 'ब्रह्मविद्या वस्तुतः एक रहस्य ही है, जिसकी उपलब्धि ज्ञान-मात्र से ही नहीं हो सकती । इसीलिए 'ब्रह्मविद्या' को 'रहस्यविद्या' कहा जाता था, जिसकी प्राप्ति के लिए अधिगतपरमार्थ विविक्त पण्डित एवं आप्त आत्मयोगी गुरु के समीप स्थित होकर अन्तेवासी-रूप में रहना आवश्यक होता था । यही सब अभिप्राय 'उपनिषद्' का प्रारम्भकाल से रहा है । परन्तु, उत्तरकाल में, इस रहस्यविद्या एवं उपनिषद्का ध्येय ब्रह्मानन्द न रहकर वाममार्गी तान्त्रिकों के सम्प्रदाय में सम्भोगानन्द हो गया और तब उसी प्रयोजन वाली विशिष्ट जघन्यमार्गदर्शिका कुत्सित उपनिषदों की रचना भी हुई ।

स्पष्टतया, रहस्यविद्या प्रतिपाद्य एवं ध्येय होने के कारण उपनिषदों की भाषा भी विशिष्ट प्रकार की रही । 'आयुर्वेद' एक वैज्ञानिक जीवनदर्शन का 'वेद' है, जिसमें साथ-साथ चिकित्सा-व्यवसाय का भी व्याख्यान किया गया है । तदनुसार 'आयुर्वेदोपनिषद् में प्रतिपाद्य विषय दार्शनिक-वैज्ञानिक होना चाहिए, तथापि इसमें अन्य उपनिषदों से पर्याप्त सादृश्य मिलता है ।

जैसा कि 'आयुर्वेद'-शब्द से तथा इसकी परिभाषा से स्पष्ट है, इसके विषय निम्नलिखित हैं — हितायु, अहितायु, सुखायु, दुःखायु, आयु के हित-अहित, आयु का प्रमाण, आयुष्य-अनायुष्य भाव-द्रव्य आदि, स्वस्थ-आतुर का ज्ञान, स्वास्थ्य-

अनुवर्तन, व्याधिपरिमोक्ष, व्याधिका हेतु-लिंग-औषधात्मक ज्ञान, आदि । १ स्वभावत: ये सब विषय धार्मिक-नैतिक स्तर से उठकर (उद्भूत होकर) धर्मभिन्न भौतिक-वैज्ञानिक-चिकित्सासंबंधी स्तर पर इस शास्त्र को पहुँचा देते हैं । इससे आयुर्वेद का स्वरूप धार्मिक-दार्शनिक-वैज्ञानिक है । स्वभावत: 'आयुर्वेदोपनिषद्' का स्वरूप भी वैसा ही कल्पना में आता है । परन्तु, वस्तुस्थिति यह नहीं है । आयुर्वेदोपनिषद्' में 'आयुर्वेद' अप्रधान रह गया है तथा 'उपनिषद्' प्रधान बन गयी है । इसीलिए, इसमें पुरुष, इन्द्रिय, सुख-दु:ख, इच्छाद्वेष, तृष्णा, वेदना, योग मोक्ष, आत्मा, मन, वशित्व, ऐश्वरबल, कर्मसंक्षय, व्रतचर्या, उपवास, धर्मशास्त्र, विजनेरति, विषयारति कर्मणामसमारम्भ, कृतकर्मपरिक्षय, नैष्कर्म्य, अनहंकार, स्मृति, अयन, अपुनरागमन, सत्याबुद्धि, चरमसंन्यास, ब्रह्मभूति, ब्रह्मविदांगति, आदि धार्मिक-दार्शनिक-योगात्मक एवं ब्रह्मविद्यापरक विषय ही हैं; 'त्रिसूत्री' आयुर्वेद का वर्णन नहीं किया गया । और तो और, 'स्वस्थ' एव 'आतुर' की परिभाषा तक नहीं बतायी गई । आयुर्वेद की 'त्रिसूत्री' में से 'हेतुसूत्र' के नाम पर सुख-दु ख के कारण-रूप में विषयों के साथ इन्द्रियों के चतुर्विध योग का निर्देशमात्र किया गया है । २ आयुर्वेद के अन्य वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक (professional) विषय भी इसमें नहीं हैं । अर्थात्, प्रस्तुत 'आयुर्वेदोपनिषद्' धार्मिक-दार्शनिक है, वैज्ञानिक-व्यावसायिक (professional) नहीं ।

---

१ (क) 'हिताहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेद: स उच्यते ।।' (चरक.सूत्र.१.४१)

(ख) 'तदायुर्वेदयतीत्यायुर्वेद:; कथमिति चेत् ? उच्यते—स्वलक्षणत: सुखासुखतो हिताहित: प्रमाणाप्रमाणतश्च । यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतो ऽप्यायुर्वेद: ।···· ··· ।'
(चरक, सूत्र, ३०.२३)

(ग) 'हेतुलिंगौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् । त्रिसूत्रं—।।'(चरक.सूत्र. १.२४)

(घ) '—देहप्रकृतिलक्षणमधिकृत्य चोपदिष्टमायुष: प्रमाणमायुर्वेदे ।।'(चरक सूत्र. ३०.२५)

(ङ) 'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च ।।' (चरक सूत्र.३०.२६)

२. 'नेन्द्रियाणि न चैवार्था: सुखदु:खस्य हेतव: ।
हेतुस्तु सुखदु:खस्य योगो दृष्टश्चतुर्विध: ।।' (आयुर्वेदोपनिषद् । २)

स्वभावत:'आयुर्वेदोपनिषद्, की शैली (विषयनिर्वाह-शैली) भी अन्य उपनिषदों के समान है —उपदेशात्मक; आप्तवाक्य के सदृश। आयुर्वेद के संहिता-ग्रन्थों, विशेषत: चरकसंहिता, की प्रश्न-उत्तर- शैली एवं विविध विकल्प-विवेक-समीक्षा-समन्वय-शैली का दर्शन इसमें नहीं होता। परिस्थितिभेद-मतभेद-मार्गभेद आदि कोई भेद इसमें नहीं; एकमात्र यही मार्ग बताया गया है कि किस प्रकार सुख-दु:ख के मूलकारण (इन्द्रियेन्द्रियार्थ-संयोग) को समझकर उससे बचने के लिए भवबन्धन को काटकर ब्रह्मभूति प्राप्त की जाय। अर्थात्, इसकी शैली उपदेशात्मक आप्तवचनात्मक एवं धार्मिक ही है।

इसी प्रकार, 'आयुर्वेदोपनिषद्' की भाषा भी उपदेशात्मक है। तथापि, इसमें वह उदात्तता नहीं आपाई जो अन्य उपनिषदों (विशेषत: ईशादि दस-ग्यारह मुख्य वैदिक उपनिषदों) की भाषा में है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने एतद्विषयक स्तर भी उतना ऊँचा नहीं रखा है; ऐसा स्वाभाविक भी है क्योंकि आयुर्वेद का मूलाधार भौतिक-वैज्ञानिक अधिक होने के कारण उससे सम्बद्ध उपनिषद् बहुत-कुछ तदनुगामी रहेगी ही। यों, अधिकांश लघु-उपनिषदों की भाषा भी ऐसी ही है। और, 'शाक्त'-उपनिषदों की भाषा में प्रवाह एवं रसविशेष का उद्रेक विशेष रूप में होने पर भी उदात्तता 'आयुर्वेदोपनिषद्' से बहुत-बहुत हीन है, बल्कि सर्वथा अभावमय है; और वस्तुत: उदात्तता की दृष्टि से वे शाक्त उपनिषदें इस'आयुर्वेदोपनिषद्' के पासंग में भी नहीं आतीं। अस्तु, भाषा की दृष्टि से भी आयुर्वेदोपनिषद्' में आयुर्वेदत्व-आयुर्वेदीयत्व की अपेक्षा उपनिषत्त्व ही प्रधान है। 'चरकसंहिता' की सामान्य प्रांजल प्रसादमयी भाषाकी तुलना में तो इसकी भाषा ठहर ही नहीं पाती —वह प्रसाद, प्रवाह, मूर्तता, सरलता एवं सरसता इसमें कहाँ! तथापि भाषा हीन भी नहीं है। चरकसंहिता की सामान्य भाषा से भेद का कारण वस्तुत: इसका विषय-भेद ही है।

'आयुर्वेदोपनिषद्' के वाक्य या सूत्र श्लोकबद्ध हैं, जिनका छन्द 'अनुष्टुप्' या 'पद्य' है। छन्दोगठन सुन्दर है। 'अनुष्टुप्' छन्द अत्यन्त सरल होने के कारण शब्द-गठन के लिए छन्दोभंग नहीं करना पड़ा। कुछ सामान्य अपवादों को छोड़कर सामान्यत: भावयोजना-अर्थयोजना इस छन्दोगठन की अनुगामी-अनुवादी-संवादी ही रही है, विसंवादी या विक्षिप्त कम ही हुई है।

इस भूमिका के बाद, यह रहस्य उद्घाटित करना रसभंगकारक नहीं होगा कि चरकसंहिता-शारीरस्थान-प्रथमाध्याय के पिछले कुछ श्लोकों तथा अन्य-स्थानीय कुछ पद्यों का विषय उपनिषद्-जैसा होने के कारण उन्हीं का संग्रह 'आयुर्वेदोपनिषद्' के रूप में कर दिया गया है।

'आयुर्वेदोपनिषद्' के पद्य एवं उनकी व्याख्या—

अब अगले कुछ पृष्ठों में हम 'आयुर्वेदोपनिषद्' के पद्यों-उपदेशों को उनकी व्याख्या के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं।

'पुरुष' क्या है ?

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः।
चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः ॥१॥

अर्थात्—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये पंचमहाभूत तथा छठी चेतना-धातु, इन छहों के समुदायको 'पुरुष' कहते हैं। और, अकेली छठी 'चेतनाधातु' को भी 'पुरुष' की संज्ञा दी गयी है।

यहाँ खादि (आकाश-आदि) पंचमहाभूत कहने से आकाशादिभूतों द्वारा निर्मित श्रोत्र-त्वक्-नेत्र-रसना-घ्राण इन ज्ञानेन्द्रियों का भी ग्रहण हो जाता है। और, 'चेतनाषष्ठ' पद में 'चेतना' शब्द से चेतना के आधारभूत 'समनस्क आत्मा' का अभिप्राय है। ऐसा जो 'षड्धातुज पुरुष' है उसका प्रतिपादन 'वैशेषिक दर्शन' में किया गया है, और वही 'चिकित्स्यपुरुष' नाम से चिकित्साशास्त्रका क्रियाक्षेत्र है (Physical psycho-spirito-somatic body)। ऐसे भौतिक शरीर में ही समनस्क आत्मा अधिष्ठित होता है— पुरी में शयन करता है; इसीलिए उसे 'पुरुष' कहते हैं ('पुरि शरीरे शेते इति पुरुषः, आत्मा इत्यर्थः')। वह पुरीशयनकर्ता तत्व अन्य शास्त्रों में तो 'पुरुष' नाम से कहागया है, परन्तु चिकित्साशास्त्र का क्रियाक्षेत्र न होने के कारण 'पुरुषसंज्ञक' रूप में चरकसंहिता में बताया गया है। तथापि, उपनिषद् का विषय आत्मा-परमात्मा-परक होने के कारण 'आयुर्वेदोप-निषद्' के इस सन्दर्भ में उस चेतनाधातु को ही 'पुरुष' मानने में दोष नहीं है ॥१॥

सुख-दुःखका हेतु चतुर्विध संयोग ही होता है—

नेन्द्रियाणि न चैवार्थाः सुखदुःखस्य हेतवः।
हेतुस्तु सुखदुःखस्य योगो दृष्टश्चतुर्विधः ॥२॥

सन्तीन्द्रियाणि सन्त्यर्था, योगो न च, न चास्ति रुक् ।
न सुखं, कारणं तस्माद् योग एव चतुर्विधः ॥३॥

अर्थात्—न तो इन्द्रियाँ और नाहीं इन्द्रियार्थ (श्रव्य-स्पृश्यदृश्य-रसनीय एवं घ्रेय) अपने - आप में सुख या दुःख के उत्पादक होते हैं; सुख–दुःख के वास्तविक कारण तो इन्द्रियों एवं इन्द्रियार्थों के चतुर्विध योग ही हैं। दूसरे शब्दों में, चाहे इन्द्रियाँ उपस्थित हैं तथा तत्तद् इन्द्रियार्थ भी विद्यमान हैं परन्तु जब तक उनका परस्पर संयोग या सम्पर्क नहीं होता तब तक न तो रुजा (रोग या दुःख की अनुभूति) होती है नाहीं सुखकी अनुभूति । इससे स्पष्ट है कि इन्द्रिय-इन्द्रियार्थ का चतुर्विध संयोग ही वस्तुतः सुख या दुःख का करने वाला होता है ।

इन्द्रिय-इन्द्रियार्थ के संयोग चार प्रकार के हो सकते हैं, तद्यथा—सम्यग्योग, मिथ्यायोग, अतियोग एवं हीनयोग । सम्यग्योग से तो सुख मिलता है, तथा शेष तीन से दुःख एवं रोग उत्पन्न होता है । नेत्र से हम सुन्दर द्रष्टव्य पदार्थ को ठीक प्रकार से देखें तो सुख मिलेगा, परन्तु हीनमात्रा या अतिमात्रा में अथवा टेढ़े-मेढ़े होकर अथवा प्रकाश-आदि की न्यूनाधिकता में देखें तो आँखें थकेंगी तथा रोगो–त्पत्ति होगी । इसी प्रकार से सभी इन्द्रियों के बारे में होता है । हीनयोग का एक रूप अयोग (अत्यन्तायोग) भी है, उससे भी तत्तद्-इन्द्रिय की क्षीणता (disuse atrophy) आदि व्याधियाँ होती हैं । अर्थात्, इन्द्रिय-इन्द्रियार्थ के चतुर्विध योग ही सुख-दुःख के कारण हैं । अतएव शरीर धारण करके विषयमय संसार में आने से दुःखी एवं उद्विग्न होने की आवश्यकता नहीं, अपितु विवेक-पूर्वक सम्यग्योग के द्वारा हम यहाँ सुखी हो सकते हैं ।

जिस प्रकार का चतुर्विध योग इन्द्रिय-इन्द्रियार्थ के सम्बन्ध में होता है, वैसा ही वाणी-मन-शरीर-सम्बन्धी कर्मों के साथ भी तथा नित्यग एवं आवस्थिक काल (ऋत्वादि एवं वय -आदि) के साथ भी सम्भव है । वे योग भी यदि समुचित हों तो सुख देते हैं तथा अन्यथा होने पर दुःखद होते हैं ॥२-३॥

सुख-दुःख-अनुभूति के कारण—

नात्मेन्द्रियं मनो बुद्धि गोचरं कर्म वा विना ।
सुखदुःखं, यथा यच्च बोद्धव्यं तत्तथोच्यते ॥४॥

अर्थात्—आत्मा, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, गोचर (इन्द्रियार्थ) एवं कर्म (पुराकृत कर्म के विपाक से बनी अदृष्ट नियति) के बिना सुख-दुःख की अनुभूति नहीं हो सकती। जो बोद्धव्य सुख-दुःख कार्य-प्रवृत्ति आदि के अनुसार जिस प्रकार से बोद्धव्य है, उसका उसी रूप में व्याख्यान किया जाता है, अन्यथा नहीं।

सुख-दुःख की अनुभूति के लिए आत्मा-आदि की उपस्थिति आवश्यक है सही, परन्तु वे तो जीवित शरीर में सदा उपस्थित हैं ही। उनके रहते भी सुख-दुःख तो तभी होता है, जब कि सात्म्यासात्म्येन्द्रियार्थसंयोग सम्पन्न होता है—और, यही तथ्य यहाँ ज्ञातव्य है ॥ ४ ॥

सुख-दुःख की अनुभूति के प्रवर्तक द्विविध सम्पर्क—

स्पर्शनेन्द्रियसंस्पर्शः स्पर्शो मानस एव च ।
द्विविधः सुखदुःखानां वेदनानाम् प्रवर्तकः ॥५॥

अर्थात्—सुख-दुःख की अनुभूति के प्रवर्त्तक दो प्रकार के संस्पर्श (या, सम्पर्क) होते हैं, एक तो स्पर्शनेन्द्रिय त्वचा के साथ तत्तत् सुखकर-दुःखकर भावों-द्रव्यों का सम्पर्क-सम्बन्ध तथा दूसरा मन के साथ। स्पर्शन-इन्द्रिय से संस्पर्श अन्य चक्षु-आदि इन्द्रियों के लिए भी प्रतीक-रूप है। मनका भी चिन्तन-आदि कर्म चिन्त्य-तत्त्व के साथ सूक्ष्म सम्पर्क के बिना असम्भव है ॥५॥

इच्छाद्वेषात्मिका तृष्णा सुखदुःखात् प्रवर्तते ।
तृष्णा च सुखदुःखानां कारणम् पुनरुच्यते ॥६॥
उपादत्ते हि सा भावान् वेदनाश्रयसंज्ञकान् ।
स्पृश्यते नानुपादाने नास्पृष्टो वेत्ति वेदनाः ॥७॥

अर्थात्—सुख-दुःख की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार होता है। प्रथम, सुखसे इच्छारूपी तृष्णा उत्पन्न होती है तथा दुःख से द्वेषरूपी तृष्णा। ऐसी तृष्णा सुखद-अभिलषित विषय में प्रवृत्ति कराती है तथा दुःखद-द्विष्ट विषय से निवृत्ति; —इस प्रकार वही तृष्णा पुनः सुख एवं दुःख को उत्पन्न कराती है। वही तृष्णा वस्तुतः वेदना (या, अनुभूति) के आश्रयभूत विषय-काल-आदिको ग्रहण करती-कराती है और इस प्रकार सुख-दुःख को उत्पन्न करती है। परन्तु, वह तृष्णा भी विषय या इन्द्रियार्थ-रूपी उपादान के अभाव में स्पर्श या सम्पर्क नहीं स्थापित करा सकती और ऐसे स्पर्श-सम्पर्क के बिना वेदना (सुख-दुःख की अनुभूति) भी नहीं हो सकती ॥ ६-७ ॥

वेदनाओं के अधिष्ठान मन और सेन्द्रिय शरीर—

वेदनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ।
केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुर्णैर्विना ॥ ८ ॥

अर्थात्— सुखदुःखात्मक अनुभूति (वेदना) के अधिष्ठान दो होते हैं एक तो मन और दूसरा इन्द्रियसहित शरीर। परन्तु शरीर में स्थित केश-लोम-नखाग्र-अन्न-पुरीष-मूत्र एवं शब्दादि गुण इसमें अपवाद हैं; इनमें वेदना अधिष्ठित नहीं होती। हाँ, मल-मूत्र-आदि के त्याग -आदि के समय अनुभूत होने वाली वेदना उनके आधार भूत शरीरावयवों में ही स्थित होती है ॥८॥

योग एवं मोक्ष में वेदना-प्रवृत्ति का अभाव :—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम् ।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः ॥९॥

अर्थात्—'योग' एवं 'मोक्ष' इन दो अवस्थाओं में सभी वेदनाओं का अभाव हो जाता है। इनमें से 'योग' की स्थिति में वेदना-निवृत्ति स्थायी नहीं अपितु अस्थायी होती है, 'योग' में निवृत्त वेदना पुनः उत्पन्न हो सकती है। परन्तु 'मोक्ष' की अवस्था में वेदनानिवृत्ति निश्शेष अर्थात् सर्वथा अपुनर्भावी होती है। वस्तुतः योग' ही 'मोक्ष' का प्रवर्तक है।

यहाँ, 'योग' का अर्थ 'इन्द्रिय-इन्द्रियार्थ-संयोग' नहीं, अपितु चित्तवृत्तिका निरोध एवं क्रियामात्र का अभाव यहाँ अभिप्रेत है। अगले दो पद्यों में यह बताया जाने वाला है कि सुख-दुःख तो आत्मा-मन-इन्द्रिय एवं इन्द्रियार्थ के सन्निकर्ष से हुआ करता है, अतः यदि मनोनिग्रह (चित्तवृत्तिनिरोध; 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः') करके इस सन्निकर्ष को होने ही न दिया जाय तो वही 'योग' अथवा 'सशरीर का मोक्ष' कहाता है। उसी 'योग' से यहाँ अभिप्राय है। 'मोक्ष' का अर्थ है, शरीर आदि का अत्यन्तोच्छेद; पुनर्जन्म का बन्धन टूटना। तब वेदनाप्रवृत्ति-सुखादिप्रवृत्ति पुनः होती ही नहीं। परन्तु, यह वचन भी सर्वथा आत्यन्तिक (absolute) नहीं, अपितु सापेक्ष [relative] है। 'मोक्ष' से हुई यह 'अनावृत्ति' वस्तुतः 'यावद्ब्रह्मलोक-स्थिति' होती है (देखें—छान्दोग्योपनिषद् ८.१५.१ के 'यावदायुषं ब्रह्मलोकमभि-सम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते' इस वाक्य पर शांकरभाष्य——···

"कार्यब्रह्मलोकमभिसम्पद्य यावद् ब्रह्मलोकस्थितिः तावत्तत्रैव तिष्ठति प्राक्ततो नावर्तत इत्यर्थः" । वस्तुतः इस चालू सृष्टि या मानव-लोक के शेष भाग में ऐसे मोक्ष वाले का पुनर्जन्म नहीं होता (देखें—छान्दोग्योपनिषद् ४.१५.५ के 'एष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते' इस वाक्य में 'इमं' पद पर बल दिया गया है; यह निषेध अग्रिम मानवावर्त पर लागू नहीं होता)। यह 'मोक्ष' परान्तकाल (तैंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, और ऐसे सौ वर्षों का 'परान्तकाल' होता है।" —महर्षि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश, नवम समुल्लास) तक ही सीमित होता है (देखें—मुण्डकोपनिषद् ३.२.६ के 'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे' इस वाक्य पर शांकरभाष्य—"संसारिणां ये मरणकालास्ते अपरान्ताः, तानपेक्ष्य मुमुक्षूणां संसारावसाने देहपरित्यागकालः परान्तकालः, तस्मिन् परान्तकाले—"), उसके बाद नवीन सृष्टि के समय आत्मा के अमर होने के कारण पुनः नवीन मनके साथ संयोग होकर नवीन सृष्टि में उस चेतनाधातुका खादिपंचमहाभूतों से संयोग होता है जिससे नया प्राणी बनता है और नये माता-पिता आदि के सम्बन्ध बनते हैं (देखें—'स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च'—ऋग्वेद १.२४.२; यहाँ इस आवर्तक्रमको अर्थात् पुनर्जन्म-चक्र को 'अदिति' [1] अर्थात् अखण्डनीय अर्थात् 'सदा चालू रहने वाला' कहा है)। इस प्रकार, पुनर्जन्म-धारण का अत्यन्तोच्छेद कभी नहीं होता ('इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः'—सांख्यसूत्र १.१५९) ॥९॥

सशरीर 'योग' क्या है ?

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्तते ।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे ॥१०॥
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते ।
सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः ॥११॥

अर्थात्—सुख एवं दुःख तब उत्पन्न होते हैं जब आत्मा-मन-इन्द्रियों एवं इन्द्रियार्थों का सन्निकर्ष-सम्बन्ध होता है। 'मन' इनमें मध्यवर्ती है जिससे भीतर की ओर आत्मा है तथा बाहर की ओर इन्द्रियाँ एवं इन्द्रियार्थ। यदि मन 'अनारम्भ' करे

---

१ 'द्यति नश्यति इति दितिः ('दो अवखंडने' धातु से)। न दितिः इति अदितिः, अखण्डनीया इत्यर्थः।'

अर्थात् बाह्य प्रवृत्ति (इन्द्रिय-इन्द्रियार्थ-गति) को त्याग कर आत्मस्थ स्थिर एवं एकान्तनिष्ठ हो जावे तो सुख-दुःख से निवृत्ति हो जावेगी और वह प्राणी 'वशी' हो जावेगा। उसी अवस्था को योग-ज्ञानी ऋषि लोग 'सशरीर प्राणी का योग' कहते हैं। योग-सिद्धियाँ प्राप्त होने पर 'वशित्व' हो जाता है ॥१०-११॥

'वशी' की विशेषताएँ :—

आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥१२॥
इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनाम् बलमैश्वरम्।
शुद्धसत्त्वसमाधानात् तत्सर्वमुपजायते ॥१३॥

अर्थात्—योगियों में योग के प्रभाव से जो उत्कृष्ट 'वशित्व' तथा 'ऐश्वर' भाव एवं बल आ जाता है, उसके निम्नलिखित आठ प्रकार होते हैं—'आवेश', अर्थात् दूसरे शरीर में प्रविष्ट होने का सामर्थ्य; परचित्तका ज्ञान; इन्द्रियार्थों में प्रवृत्ति इच्छाधीन होना; नेत्र से अदृश्यका भी दर्शन कर सकना; कान से अतीन्द्रिय शब्द भी सुन सकना; सभी भावों के तात्त्विक स्वरूप का स्मरण, या सभी भावों एवं तत्वों के स्मरण का सामर्थ्य; अमानुषी-अलौकिक कान्ति; इच्छानुसार दृश्य को भी अदृश्य कर देना और पुनः इच्छानुसार दृश्य बना देना। ये सब योग की आठ प्रकार की सिद्धियाँ हैं। रजस्-तमस् से हीन मनको आत्मा में सम्यक्तया समाहित करने पर इन सबकी उपलब्धि सम्भव है ॥१२-१३॥

'मोक्ष' क्या है और कैसे मिलता है? :—

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते ॥१४॥

अर्थात्—सभी प्रकार के संयोगों एवं सुखदुःखात्मक प्रवृत्तियों से शरीर-बुद्धि-अहंकार-आदि से वियोग ही 'अपुनर्भव' या 'मोक्ष' कहलाता है। अतः मन में रजस्-तमस् का अभाव हो जाने पर तथा कर्मफल भोग चुकने के कारण कर्मसंक्षय हो जाने पर इन्हीं प्रवृत्ति-अभावों के कारण 'मोक्ष' हो जाता है ॥१४॥

'मोक्ष' के उपाय :—

सतामुपासनं सम्यगसताम् परिवर्जनम् ।
व्रतचर्योपवासौ च नियमाश्च पृथग्विधाः ॥१५॥
धारणं धर्मशास्त्राणां विज्ञानं विजने रतिः ।
विषयेष्वरतिर्मोक्षे व्यवसायः परा धृतिः ॥१६॥
कर्मणामसमारम्भः कृतानां च परिक्षयः ।
नैष्क्रम्यमनहंकारः संयोगे भयदर्शनम् ॥१७॥
मनोबुद्धिसमाधानमर्थतत्त्वपरीक्षणम् ।
तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात् सर्वमेतत् प्रवर्तते ॥१८॥

अर्थात्—'मोक्ष' के उपाय निम्नलिखित होते हैं—सत्संग, असाधु-त्याग, व्रतचर्या, उपवास, विविध यम-नियमादिका पालन, धर्मशास्त्र एवं सद्ग्रंथों का पठन-पाठन, लौकिक से भिन्न विशिष्ट आध्यात्मिकज्ञान का अभ्यास, भीड़-भाड़ से दूर एकान्त का सेवन, विषयों से वैराग्य, मोक्ष के लिए प्रयत्नशीलता, मन को अत्यन्त संयत एवं नियमित रखना, अनागत धर्म-अधर्म-साधनभूत कर्मों को न करना, पुराकृत कर्मों का फलभोग के द्वारा परिक्षय हो जाना, संसार से निकलने की इच्छा, अहं-कार हीनता, आत्मा एवं शरीर के संयोग में भय मानना, मन एवं बुद्धि को आत्मा में सम्यक्तया निहित करना तथा विषयों एवं सभी तत्त्वों को वास्तविक रूप में सब दृष्टियों से समझ कर उनसे विरक्ति । यह सब तभी हो सकता है जबकि आत्मा को सम्यक्तया जान लिया जाता है तथा पूर्वजन्मों के रूपों का स्मरण करके यह समझ लिया जाता है कि शरीर आत्मा से भिन्न एक परिधानमात्र है और कि उसमें आसक्ति हानिकर है ॥१५-१८॥

'तत्त्वस्मृति' दुःखबंधन को कैसे काटती है ?

स्मृतिः सत्सेवनाद्यैश्च धृत्यन्तैरुपजायते ।
स्मृत्वा स्वभावं भावानां स्मरन् दुःखात् प्रमुच्यते ॥१९॥

अर्थात्—ऊपर जो मोक्ष के उपाय सत्संग से लेकर मनो-नियमन तक बताये गये हैं उनके कारण आत्मा पवित्र होकर स्वभाव को (स्वरूप को एवं पूर्वजन्म में अपनी स्थितियों तथा मोक्षप्रद अनुभवों को) और सभी चीजों की वास्तविकता को समझने तथा स्मरण करने में समर्थ हो जाता है कि यह सब प्रवृत्ति तो दुःखजनक है । तब उसी स्मृति के द्वारा वह दुःखों के बन्धन से छूट जाता है ॥१९॥

'तत्त्वस्मृति' के कारण या साधन-उपाय :—

वक्ष्यन्ते कारणान्यष्टौ स्मृतिर्यैरुपजायते ।
निमित्तरूपग्रहणात् सादृश्यात् सविपर्ययात् ॥२०॥
सत्त्वानुबन्धादभ्यासाज्ज्ञानयोगात् पुनः श्रुतात् ।
दृष्टश्रुतानुभूतानां स्मरणात् स्मृतिरुच्यते ॥२१॥

अर्थात्—तत्त्वस्मृति या सामान्य स्मृति निम्नलिखित आठ कारणों या उपायों से होती है;तद्यथा—कारण को देख कर कार्य का स्मरण, आकार को देख कर (यथा, बन में नील-गाय को देख कर गाय का स्मरण), सादृश्य से (यथा, पिता के सदृश पुरुष को देख कर पिता का स्मरण), अत्यन्त विपरीतता से (यथा, अतिकुरूप व्यक्ति को देख कर तद् विपरीत अतिस्वरूप व्यक्ति का स्मरण, पापी से धर्मात्मा का स्मरण),स्मरणीय तत्व के स्मरणार्थ मन को उसमें लगाने से, अभ्यासबल से, तत्व-ज्ञान-योग से, तथा पूर्वश्रुत तत्व के पुनः श्रवण से। और, 'स्मृति' का स्वरूप यह है कि पहले देखे-सुने एवं अनुभूत तत्व का स्मरण हो ॥२०-२१॥

'तत्त्वस्मृति' मोक्ष की साधिका होती है :—

एतत्तदेकमयनं मुक्तैर्मोक्षस्य दर्शितम् ।
तत्त्वस्मृतिबलं, येन गता न पुनरागताः ॥२२॥
अयनं पुनराख्यातमेतद्योगस्य योगिभिः ।
संख्यातधर्मैः सांख्यैश्च मुक्तैर्मोक्षस्य चायनम् ॥२३॥

अर्थात्—जीवन्मुक्त ऋषि-मुनियों एवं आप्तों ने इस तत्त्वस्मृतिरूपी बल को ही मोक्ष के एकमात्र श्रेष्ठ मार्ग के रूप में क्रियात्मकदृष्ट्या दिखाया है, जिस मार्ग का अनुसरण करने पर मोक्ष में से इस चालू मानव-आवर्त में लौटना नहीं होता। संख्यातधर्मा जीवन्मुक्त सांख्यआप्त योगियों ने भी मोक्ष के इसी एक मार्ग का व्याख्यान किया है ॥२२-२३॥

संसार का एवं भवबन्धन का कारण अज्ञान है तथा मोक्ष का ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) :—

सर्वं कारणवद् दुःखमस्वं चानित्यमेव च ।
न चात्मकृतकं तद्धि तत्र चोत्पद्यते स्वता ॥२४॥

यावन्नोत्पद्यते सत्या बुद्धिर्नैतदहं यया ।
नैतन्ममेति विज्ञाय ज्ञः सर्वमतिवर्तते ॥२५॥

अर्थात्—इस संसार में बुद्धि-अहंकार-शरीर-आदि उत्पत्तिशील सभी तत्व दुःखजनक होते हैं। वे सभी आत्मा से भिन्न एवं अनित्य होते हैं। आत्मा उदासीन है अतः वह उन्हें नहीं बनाता, तथापि अज्ञानवश कोई-कोई आत्मा उनमें 'स्व'-बुद्धि एवं आसक्ति कर लेता है। वास्तव में ऐसा तभी होता है जब तक कि आत्मा में सत्याबुद्धि का विकास नहीं हो जाता। सत्याबुद्धि यह है कि बुद्धि-अहंकार-शरीर आदि तो आत्मा से भिन्न हैं तथा मुझ आत्मा के नहीं अपितु प्रकृति के प्रपंचमात्र हैं ऐसी बुद्धि आत्मा को ज्ञानी बना कर तार देती है ॥२४-२५॥

उस 'चरमसंन्यास' की अवस्था का वर्णन :—

तस्मिंश्चरमसंन्यासे समूलाः सर्ववेदनाः ।
ससंज्ञाज्ञानविज्ञाना निवृत्तिं यान्त्यशेषतः ॥२६॥

अर्थात्—गुरुवचन को मानकर मोक्षोपयोगी रूप में क्रियासंन्यास लेने के बाद जब अपने अनुभव के कारण विरक्ति होती है तथा सत्याबुद्धि उदित होती है तो उस चरम संन्यास की अवस्था में सभी प्रकार की वेदनाएँ अपने बुद्धि-आदि कारणों समेत सर्वथा निवृत्त हो जाती हैं तथा साथ ही 'संज्ञा' (निर्विकल्पक आलोचन, अथवा नामोल्लेख-द्वारा ज्ञान), 'ज्ञान' (सविकल्पक ज्ञान) एवं 'विज्ञान' (शास्त्रज्ञान या बुद्धि-अध्यवसाय) आदि सभी से पूर्णतः छुट्टी मिल जाती है। यहाँ तक कि शरीरोपरम के बाद मोक्ष को दिलाकर कारणाभाव में तत्त्वज्ञान भी समाप्त हो जाता है ॥२६॥

सर्ववित्-सर्वसंन्यासी-सर्वसंयोगनिःसृत-प्रशान्त भूतात्मा के विषयमें

अतः परं ब्रह्मभूतो भूतात्मा नोपलभ्यते ।
निःसृतः सर्वभावेभ्यश्चिह्नं यस्य न विद्यते ॥२७॥
ज्ञानं ब्रह्मविदां चात्र नाज्ञस्तज्ज्ञातुमर्हति ॥२८॥

अर्थात्—तब भूतात्मा प्रकृत्यादि से रहित एवं ब्रह्मभूत हो जाता है, भूतात्मा-रूप में नहीं रहता। प्रकृति के सभी बन्धनों से वह बाहर होता है। प्राण-अपान-आदि चिह्नों का भी उसमें सर्वथा अभाव होता है। ऐसा वह अक्षर (अक्षरणशील) एवं अलक्षण (निश्चिह्न) हो जाता है ऐसे मोक्ष को एवं मुक्तात्मा को जानने का सामर्थ्य ब्रह्मादिज्ञानियों में ही होता है, अज्ञों में नहीं ॥२७-२८॥

निष्कर्ष :—

त्रिसूत्री आयुर्वेदका व्याख्यान करने की प्रतिज्ञा वाली 'चरकसंहिता' के शारीरस्थान अध्याय १ में एक सन्दर्भ ऐसा है जो 'ब्रह्मविद्या' का निदर्शक होने से 'उपनिषद्' की कोटि का है। उसी अंश का 'आयुर्वेदोपनिषद्' नाम से संकलन एवं व्याख्यान इस लेख में किया गया है, जिससे 'आयुर्वेद' के धार्मिक-दार्शनिक-ब्रह्मविद्यात्मक एवं आत्मानुभूतिपरक स्वरूपका विशेष ज्ञान आयुर्वेदप्रेमियों को हो सके।

ओ३म्। भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ इत्योम् शम् ॥

:————:

श्री गुरुदत्त एवं ब्रह्मसूत्र-भाष्य

डॉ० रामदत्त भारद्वाज

ब्रह्मसूत्र (सरल सुबोध भाषा भाष्य) खण्ड एक,
लेखक–श्री गुरुदत्त : प्रकाशक-शाश्वत संस्कृति परिषद्
३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१, १९७१
मूल्य–३० रुपया पृ० संख्या ५०६

———

यूनेस्को के अनुसार, भारतवर्ष की सर्वाधिक प्रचलित भाषा हिन्दी है, और इस भाषा में सर्वाधिक पठित लेखक हैं श्री गुरुदत्त। निर्विवाद रूप से हिन्दी-जगत् में गुरुदत्त जी का निज एवं प्रशस्त स्थान है। उनके उपन्यास रोचक एवं हिन्दुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं। वे एम० एससी०, कुशल वैद्य, तथा स्वामीदयानन्दसरस्वती के अनन्य भक्त हैं। उनके विचार, आर्य समाज से पोषित हैं। परन्तु उनमें कट्टरता का सर्वथा अभाव ही नहीं, नवोन्मेष का सर्जन भी है। उनके हृदय में स्वामी शंकराचार्य के लिये परम आदर है, क्योंकि उन्होंने, अपने समय में, भारतवर्ष के हिन्दुओं को एकसूत्र में बाँधने का सतत एवं सफल प्रयास किया था, किन्तु गुरुदत्त जी उनके दार्शनिक विचारों से कहीं कहीं असहमत भी हैं। असहमति कोई बुरी बात नहीं वह नवीन दृष्टि-कोण को जन्म देती है। गुरुदत्तजी का श्रीमद् भगवद्गीता पर सुन्दर प्रवचन है। उसमें उनकी कथन शैली सरल एवं रोचक है, और कर्म, विकर्म एवं अकर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन हृदय-ग्राही है।

ब्रह्मसूत्र पर भी गुरुदत्त जी का भाष्य है। उसका प्रथम खण्ड प्रकाशित है, द्वितीय खण्ड मुद्रणयंत्रस्थ है। इसे उन्होंने 'अपने मत से लिखा है'। शंकराचार्य जी तथा उनके उपरान्त अन्य अनेक आचार्यों ने यह 'प्रथा निभायी है कि प्रत्येक सूत्र का किसी उपनिषद् वाक्य से समन्वय करने का यत्न किया जाय'। किन्तु गुरुदत्त जी 'समझते हैं कि सूत्रार्थ करने की यह प्रथा ठीक नहीं', क्योंकि 'ब्रह्मसूत्रों को दर्शन-

शास्त्र कहा गया है (और) दर्शनशास्त्र का प्रयोजन किसी एक अथवा कई एक ग्रन्थों का दर्शन कराना नहीं', कुछ 'सत्य सिद्धान्तों का युक्ति से प्रतिपादन करना है'। उनकी धारणा है कि प्रमाण और युक्ति शंकराचार्य जी का पक्ष सिद्ध नहीं करते।' उक्त भाष्य की प्रस्तावना में गुरुदत्त जी ने विस्तार से अपनी मान्यताए और अपने भाष्य के आधारों को उपस्थित किया है।

संस्कृत में अनेक आचार्यों के भाष्य ब्रह्मसूत्र पर उपलब्ध हैं और हिन्दी में उनके कतिपय अनुवाद भी हैं। परन्तु जहाँ तक हमारी जानकारी है हिन्दी में स्वतन्त्र भाष्य न था, जिसकी पूर्ति गुरुदत्त जी ने की है। उनका मार्ग-दर्शन प्रशस्त है; और भाष्य युक्तियों से परिपूर्ण तथा वेदों तथा उपनिषदादि के प्रमाणों से पुष्ट है।

परन्तु गुरुदत्त जी के विचारों से प्रायः सहमत होते हुए भी हम अपने को शंकराचार्य जी से भी असहमत नहीं पाते। उदाहरणतः 'ब्रह्मसूत्रम्' का द्वितीय सूत्र है 'जन्माद्यस्य यतः' जिसके सम्बन्ध में गुरुदत्त जी का मत है कि यह सूत्र युक्ति-युक्त है और यह युक्ति किसी वेदादि प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती, अतएव उनके अनुसार ईश्वर की सिद्धि तर्कानुमान से सम्भव है। स्वामी शंकराचार्य ने, इस विषय में, अनुमान को सहायक मात्र माना है और श्रुत्यादि के शब्द प्रमाण को ही ठीक समझा है। नैयायिकों ने ईश्वर सिद्धि के लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। 'कुसुमाञ्जलि' में उदयनाचार्य का वचन है।

कार्यायोजन-धृत्यादेः, पदात्प्रत्ययतः श्रुतेः
वाक्यात् संख्या-विशेषाच्च, साध्यो विश्वविदव्ययः ॥ ५०१॥

सांख्य दर्शन में ईश्वर को असिद्ध (नाट-प्रूव्ड) समझा गया, क्योंकि उसकी सत्ता न तो मण्डित (प्रूव्ड) है, और न खण्डित (डिस्प्रूव्ड) ही। सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक इमैन्युअल कैंट ने ऑण्टोलौजिकल, कॉस्मोलौजिकल और फिजिको-थियोलौजिकल इन तीनों प्रकार के प्रमाणों का परीक्षण कर उन्हें ईश्वर सिद्धि के निमित्त तर्कोऽप्रतिष्ठ समझा है। दर्शन-शास्त्र का दृष्टिकोण ऐसा ही है। अतएव ईश्वर सिद्धि के लिए वेदादि का शब्द ही प्रमाण है। किसी पुत्र की माता और पिता के मातृत्व पितृत्व के सम्बन्ध में उस पुत्र को अनुमान की अपेक्षा आप्त प्रमाण पर ही निर्भर रहना होता है, यही बात जगत्पिता के सम्बन्ध में है। ऋग्वेद [१०.१२६.६] का वचन

"अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव" ।। तर्क (रीज़िन) क्रमिक और अनुभव अथवा अन्तर्ज्ञान (इन्ट्यूशन) अव्यवहित, होता है। ईश्वर-प्राप्ति अनुभव-गम्य है। इस विषय में अनुमान का मूल्य तो है, किन्तु वह मित मूल्य है। अतएव स्वामी शङ्कराचार्य का यह वाक्य ठीक ही है: श्रुत्येव च सहायत्वेन तर्कस्याभ्युपेतत्वात्।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना, अत: विचारवैविध्य चलता रहा है, और रहेगा। गुरुदत्त जी ने 'ब्रह्मसूत्र' पर स्वतन्त्र और सप्रमाण भाष्य सरल हिन्दी में करने का जो प्रयास किया वह स्तुत्य है, उनका यह ग्रंथ पठनीय, एवं संग्रहणीय है। उसके द्वितीय खण्ड के लिए पाठकों को उत्सुकता बनी रहेगी।

भारतीय साहित्यकार संघ का प्रकाशन

१ ऋतम्भरा	—	काव्य संकलन
२ भारतीय इतिहास परिषद्	—	विवरण
३ वीर बंदा वैरागी—भाग १	}	सिद्धि एवं साध्य
वीर बंदा वैरागी—भाग २	}	
४ वीर बंदा वैरागी	—	श्रेय-विशेषांक
५ श्रेयसी	—	काव्य संकलन

प्राप्ति स्थान :

भारतीय साहित्यकार संघ-कार्यालय

५१/१, न्यू मार्केट, करौल बाग, दिल्ली-५

दूरभाष : ५६५७०७

अथवा

भारती साहित्य सदन

३०/६०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

दूरभाष : ४७२६७

स्वामित्व और प्रकाशन सम्बन्धी घोषणा

१. प्रकाशन स्थान	५१/१ न्यू मार्केट, करौल बाग, नई दिल्ली-५
२. अवधि	त्रैमासिक
३. मुद्रक	मोहनलाल श्रीवास्तव
राष्ट्रियता	भारतीय
पता	५१/१ न्यू मार्केट, करौल बाग, नई दिल्ली ५
४. प्रकाशक	मोहनलाल श्रीवास्तव
राष्ट्रियता तथा पता	क्रम ३ के अनुसार
५. सम्पादक	डा० रामदत्त भारद्वाज (११/६ शक्ति नगर, दिल्ली) मोहनलाल श्रीवास्तव(क्रम ३ के अनुसार
६. स्वामित्व	भारतीय साहित्यकार संघ पंजीकृत-संख्या, एस० २५६३

मैं मोहनलाल श्रीवास्तव घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार है।

मोहनलाल श्रीवास्तव

विशेष सूचना

सन् १६७२ से श्रेय में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों की दरों में निम्नलिखित परिवर्तन किया गया है :—

अन्तिम	पृष्ठ	सम्पूर्ण	१००० रु०
,,	,,	अर्धांश	५०० रु०
भीतरी	पृष्ठ	सम्पूर्ण	५०० रु०
,,	,,	अर्धांश	२५० रु०
,,	,,	चतुर्थांश	१५० रु०

विशेष स्थिति में पत्रिका की प्रबन्ध समिति को विज्ञापन की दरों में आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार है। यह पत्रिका भारत के सुशिक्षित परिवारों, शिक्षा संस्थानों और प्रबुद्ध जीवियों की पत्रिका है। अतएव इसमें प्रकाशित विज्ञापन का विशेष महत्त्व बढ़ जाता है। हमें आशा है कि विज्ञापन दाता इसमें विज्ञापन देकर अवश्य लाभ उठाएँगे।

राजपाल शास्त्री-लक्ष्मीकान्त 'मुक्त'
प्रबन्धक : व्यवस्थापक

भारतीय साहित्यकार संघ की ओर से मोहनलाल श्रीवास्तव द्वारा रघु प्रिंटिंग [प्रेस], ४७७२, जोगीवाड़ा, दिल्ली में मुद्रित तथा ५१/१ न्यू मार्केट, करौल बाग, [नई] दिल्ली-५ से प्रकाशित।